धम्मपद और उत्तराध्ययन

निर्वाण का मार्ग

आचार्य महाश्रमण

जैन विश्व भारती प्रकाशन, लाडनूं

संपादक : साध्वी सुमतिप्रभा

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (०१५८१) २२६०८०/२२४६७१
ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रथम संस्करण : जनवरी २०१६

मूल्य : ६०/- (साठ रुपये मात्र)

मुद्रक : पायोराईट प्रिण्ट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

प्रवचन करना मेरा प्रायः प्रतिदिन का कार्य है। पिछले कुछ वर्षों में मैंने विभिन्न धर्मग्रन्थों को आधार बनाकर प्रवचन किए। बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद और उत्तराध्ययन पर भी मैंने शताधिक व्याख्यान दिए। साध्वी सुमतिप्रभा ने उस व्याख्यानमाला के कुछ वक्तव्यों को निबन्धों का आकार दिया। पिछले कुछ वर्षों से वह मेरे वक्तव्यों के संपादन और निबन्धीकरण कार्य में निष्ठा के साथ संलग्न है।

प्रस्तुत पुस्तक धम्मपद में विश्वास रखने वाले और उत्तराध्ययन में आस्था रखने वाले तथा अन्य जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी बन सकेगी। शुभाशंसा।

आचार्य महाश्रमण

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

अनुक्रम

१. बंधन और मोक्ष का कारण : मन ७
२. प्रसन्न मन का साथी : सुख १०
३. गलत प्रतिक्रिया से बचें १३
४. मैत्री से वैर शान्त करें १६
५. जीवन की नश्वरता २०
६. काम को करें परास्त २३
७. मार-मुक्ति की साधना २६
८. वेश के अनुरूप साधना ३०
९. सार को प्राप्त करें ३४
१०. राग का कांटा न चुभे ३७
११. आदमी दुःखी न बने ४२
१२. इह-परलोक को सुधारें ४६
१३. श्रामण्य का अधिकारी कौन? ५१
१४. अप्रमत्त जीवन जीएं ५५
१५. अप्रमाद-रसिक बनें ५८
१६. पुरुषार्थ से मिले निर्वाण ६२
१७. यश-प्राप्ति का अधिकारी कौन? ६६
१८. आत्म-दीप का निर्माण करें ७०
१९. अप्रमाद की रक्षा करें ७३
२०. प्रमाद में मत फंसो ७८
२१. प्रमाद-मुक्ति : अप्रमाद से ८३
२२. जहां जागरूकता : वहां वर्धमानता ८८
२३. अप्रमाद बने कल्याणमित्र ९३
२४. अप्रमादी के पापकर्म नष्ट ९८
२५. प्रमादभीरू निर्वाण की ओर १००
२६. चित्त की सुरक्षा करें १०४
२७. जागृत पुरुष को भय नहीं १०९

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

१

बंधन और मोक्ष का कारण : मन

बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध ग्रन्थ धम्मपद बड़ा अच्छा ग्रन्थ है। मैं धम्मपद और उत्तराध्ययन पर कुछ तुलनात्मक विवेचन कर रहा हूं। धम्मपद का पहला श्लोक है—

मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्क'व वहतो पदं।।१/१।।

मन सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है, मन उनका प्रधान है, वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई दूषित मन से वचन बोलता है या काम करता है, तो दुःख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार चक्का गाड़ी खींचने वाले बैलों के पैर का।

धम्मपदकार ने कहा कि हमारी प्रवृत्तियों में मन प्रधान होता है। हमारी शारीरिक चेष्टा भी मन के साथ जुड़ी हुई रहती है। जैसा हमारा मन या भाव होता है, उसके अनुसार कर्मों का बंध होता है। कोई आदमी गालियां देता है तो हम अनुमान लगाएं कि उसके मन में कोई रोष का भाव है, द्वेष का भाव है, तब वह गालियां दे रहा है यानी मन पहले प्रदूषित हुआ, फिर उसकी वाणी दूषित हुई। किसी को ज्यादा गुस्सा आ जाता है तो मारपीट शुरू हो जाती है। मारपीट शुरू इसलिए हुई कि उसका मन दूषित हो गया। धम्मपदकार ने कहा कि जब आदमी का मन दूषित हो जाता है तो फिर वह दूषित भाषण करता है और दूषित कार्य करता है। आदमी गाड़ी को आगे से खींचता है तो उसके पीछे-पीछे गाड़ी के चक्के चलते हैं। इसी प्रकार जो दूषित मन वाला आदमी होता है, दुःख उसके पीछे-पीछे चलता है। महात्मा बुद्ध ने दुःख-मुक्ति का उपाय खोजा। मन और दुःख-मुक्ति की बात बौद्ध साहित्य में मिलती है तो जैन वाङ्मय में भी प्राप्त होती है। जैन आगम उत्तराध्ययन में कहा गया—

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
तं सम्मं निगिण्हामि, धम्मसिक्खाए कंथगं।।२३/५८

यह जो साहसिक, भयंकर, दुष्ट अश्व दौड़ रहा है, वह मन है। उसे मैं भलीभांति अपने अधीन रखता हूं। धर्म-शिक्षा के द्वारा वह उत्तम जाति का अश्व हो गया है।

मन एक ऐसा दुष्ट अश्व है जो अपने असवार को कभी उत्पथ में भी ले जा सकता है। उस मन को वश में करना, श्रुत की रश्मि से नियंत्रण में रखना आवश्यक होता है। महात्मा बुद्ध ने अपने मन को साधने के लिए साधना की। उनके मन में विरक्ति का भाव जागा। हालांकि ऐसी व्यवस्था की गई थी कि बुद्ध के मन में विरक्ति का भाव न आए, उसे कोई दुःख हो ही नहीं, परन्तु नियति को जो मंजूर होता है वह तो होता ही है। बुद्ध ने कभी बूढ़े आदमी को देखा, कभी रुग्ण व्यक्ति को देखा, कभी शवयात्रा को देखा तो मन में प्रश्न उठा कि ये सब क्या हैं? समाधान भी मिला कि वह वृद्ध आदमी है। इसलिए चलने में उसे कठिनाई हो रही है। वह बीमार आदमी है। इसलिए इस प्रकार चल रहा है। अमुक आदमी मर गया है, इसीलिए उसकी शवयात्रा निकाली जा रही है। बुद्ध ने सोचा, यह बूढ़ा होना, रुग्ण होना, मरना क्या होता है? चूंकि वे इन सब बातों से अनभिज्ञ थे। उन्हें जानकारी दी गई कि पहले बचपन आता है फिर जवानी और फिर बुढ़ापा भी आता है और कभी न कभी आदमी मरता भी है। इस शरीर में कभी-कभी बीमारियां भी पैदा होती हैं। यह सब ज्ञात होने पर बुद्ध के मन में कम्पन हुआ कि संसार में तो दुःख है। फिर किसी समय बुद्ध ने एक संन्यासी को देखा और जिज्ञासा हुई कि यह कौन है? बुद्ध को जानकारी दी गई कि यह संन्यासी है और संन्यासी इसीलिए बना है कि वह दुःखमुक्त हो सके। बुद्ध ने सोचा—दुःखमुक्त होने का उपाय है संन्यासी बन जाना। उन्होंने मन में ठान ली कि मुझे तो संन्यासी बनना है। एक रात अपनी पत्नी यशोधरा

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

और पुत्र राहुल को छोड़कर चल पड़े दुःखमुक्ति की खोज में, शाश्वत सुख पाने के लिए। दुःख का एक बड़ा कारण आदमी का मन बनता है। मन ही आदमी के बंधन और मोक्ष का कारण है।

प्रश्न हो सकता है कि बंधन का कारण कौनसा मन बनता है और मोक्ष का कारण कौनसा मन बनता है? समाधान मिला कि जो मन विषय में आसक्त है वह बंधन का कारण है और जो मन विषयातीत हो गया है, साधनामय हो गया है, वह मन मोक्ष का कारण बन जाता है।

आदमी कोई भी गलत काम करता है तो आमतौर से पहले मन में गलत भावना आती है, बाद में गलत काम करता है। झूठ बोलेगा तो पहले मन में कोई आवेश आएगा, कोई गलत भाव आएगा, फिर वह झूठ बोलेगा। इसका मतलब है कि मन भूमिका है, आधार है। मन खराब है तो वचन भी खराब हो सकता है, शारीरिक चेष्टा भी खराब हो सकती है। मन शुद्ध है तो वाणी भी शुद्ध और शारीरिक चेष्टा भी शुद्ध रह सकती है। जिसका मन साफ है, वह यदि जबान से कुछ कठोर बात भी कह देता है तो उसकी बात ज्यादा बुरी नहीं लगती।

धम्मपद में कहा गया कि मन हमारे जीवन में प्रधान है। इसलिए हम मन को समझें, मन को निर्मल बनाए रखने का प्रयास करें, मन को शांत रखने का प्रयास करें, मन को आवेशमुक्त रखने का प्रयास करें। हमारा यह अभ्यास सिद्ध हो गया तो मानना चाहिए हमें सुख प्राप्त हो गया।

उत्तराध्ययन जैन वाङ्मय का एक सुन्दर और रोचक ग्रन्थ है। उसमें तत्त्वज्ञान है, अध्यात्म के सूत्र हैं और घटना प्रसंग या कथानक भी हैं। दूसरी ओर मैंने धम्मपद का कुछ स्वाध्याय किया तो मुझे लगा कि धम्मपद भी बहुत अच्छा ग्रन्थ है। मेरे मन में उदारता की भावना भी है कि अच्छी बात मुझे जहां भी मिले, मैं उसका सम्मान करना चाहता हूं। धम्मपद बौद्ध वाङ्मय का बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है। उसमें भी अध्यात्म और जीवन व्यवहार की बातें प्राप्त होती हैं।

२

प्रसन्न मन का साथी : सुख

हमारे जीवन में मन बहुत सक्रिय भूमिका अदा करता है। मन से हम विचार करते हैं, स्मृति करते हैं, कल्पना करते हैं और मन से सोचकर समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करते हैं। मन कभी हमारे लिए शुभ होता है तो कभी समस्या पैदा करने वाला भी बन जाता है। एक ओर जहां मन का उजला पक्ष है तो दूसरी ओर मन का अंधेर पक्ष भी है। हमें यथार्थपरक दृष्टिकोण रखना चाहिए। उजला पक्ष भी जान लेना चाहिए और अंधेर पक्ष भी जान लेना चाहिए। जो वस्तु जैसी है, उसका उसी रूप में बोध करना चाहिए और उसी रूप में उसको प्रकट करने का प्रयास करना चाहिए। बौद्ध साहित्य के एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ धम्मपद में मन के बारे में सुन्दर कहा गया है—

मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति छाया'व अनपायिनी।।१/२।।

मन सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है, मन उनका प्रधान है, वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई प्रसन्न (स्वच्छ) मन से वचन बोलता है या काम करता है, तो सुख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार कि कभी साथ नहीं छोड़ने वाली छाया।

यदि आदमी दूषित मन से बोलता है या कार्य करता है तो दुःख उसके पीछे-पीछे आ जाता है। वैसे ही अगर आदमी का मन प्रसन्न है तो सुख उसके पीछे-पीछे आ जाता है। हम सामान्यतया प्रसन्न शब्द का अर्थ करते हैं खुश,

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

मुदित। संस्कृत कोश में प्रसन्न शब्द का जो अर्थ मिलता है वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है—'अच्छं प्रसन्नं' अर्थात् जो स्वच्छ होता है, वह प्रसन्न होता है। जैसे प्रसन्नामाकाश अर्थात् आकाश प्रसन्न है यानी बादलों से रहित स्वच्छ आकाश है। यहां धम्मपदकार ने प्रसन्न मन का अर्थ किया है स्वच्छ, निर्मल। जो आदमी निर्मल मन से बोलता है या कार्य करता है तो उसके पीछे-पीछे अथवा साथ-साथ सुख आता है। जैसे धूप में चलने वाले आदमी के साथ-साथ छाया चलती है, वैसे ही प्रसन्न मन से कार्य करने वाले व्यक्ति के साथ-साथ या पीछे-पीछे या आगे-आगे सुख चलता रहता है।

अगर आदमी के मन में ईर्ष्या की भावना है, अहंकार, माया और लालच की भावना है तो समझना चाहिए मन दूषित है। क्रोध, मान, माया और लोभ हमारे मन को प्रदूषित करने वाले तत्त्व हैं। इनके विपरीत क्षमा का भाव, विनम्रता, सरलता, ऋजुता और संतोष का भाव है तो समझना चाहिए हमारा मन प्रसन्न है, निर्मल है। हम दिनभर के अपने कार्यकलापों और मन पर ध्यान दें कि कब-कब हमारा मन दूषित हुआ। सोने से पहले आदमी को समीक्षण, निरीक्षण, वीक्षण करना चाहिए कि आज मेरा दिन किस रूप में बीता? मैं कषाय से रंजित रहा या अकषाय के भावों में रहा? मैंने किसी की मानसिक पीड़ा को कम करने का प्रयास किया या किसी को कष्ट दिया? यदि मैंने आत्मसाधना के प्रयोग—सामायिक, स्वाध्याय आदि का अभ्यास किया तो मानना चाहिए मेरा आज का दिन सुफल हो गया। यदि कुछ भी नहीं किया, न बुरा किया न अच्छा किया तो मानना चाहिए मेरा दिन निष्फल हो गया। अगर मैंने बुरा काम किया है, दुष्कृत किया है तो आज का दिन मेरा दुष्फल हो गया। सुफल वह होता है जो अच्छा फल देने वाला हो। दुष्फल वह होता है जो खराब फल देने वाला हो और निष्फल वह होता है, जो कोई भी फल नहीं देने वाला हो। हमारा दिन दुष्फल तो बने ही नहीं। निष्फल भी क्यों बने। हम अपने दिन को सफल बनाने का प्रयास करें और सुफल बनाने के लिए मन पर ज्यादा ध्यान दें। हमारा मन या मन की स्थिति कैसी रही? मन बच्चे जैसा पवित्र भी हो सकता है और मन में कुटिलता भी आ सकती है। बच्चे के मन को पवित्र माना गया है। जैसे धम्मपद में प्रसन्न मन की बात कही है, वैसे ही उत्तराध्ययन सूत्र में भी इस प्रकार की अनेक बातें आती हैं। प्रसन्नता का एक आयाम है—ऋजुता। उत्तराध्ययनकार ने कहा—

सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।
निव्वाणं परमं जाइ, घयसित्त व्व पावए।।३/१२।।

शुद्धि उसे प्राप्त होती है, जो ऋजुभूत होता है। धर्म उसमें ठहरता है जो शुद्ध होता है। जिसमें धर्म ठहरता है वह घृत से अभिषिक्त अग्नि की भांति परम निर्वाण (समाधि) को प्राप्त होता है।

ऋजुता एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जो हमारे चित्त को प्रसन्न बनाने वाला है। महाप्रभु ईसा से जब पूछा गया कि ईश्वर के साम्राज्य में प्रवेश कौन कर सकता है, तब ईसा ने प्रायोगिक रूप में जवाब दिया। एक छोटे-से शिशु को अपने हाथों में लिया और उसे दिखाते हुए कहा—जिसका हृदय इस बच्चे की तरह पवित्र है, सरल है, ऋजु है, उस व्यक्ति को ईश्वर का साम्राज्य पाने का अधिकार है।

प्रसन्न मन का साथी है सुख और प्रदूषित मन का साथी है दुःख। आदमी अपना साथी सुख को बनाए। उसके लिए अपेक्षा है कि मन की निर्मलता का विकास हो, मन की प्रसन्नता का विकास हो। वैसे तो मन की प्रसन्नता के लिए अनेक बातें हो सकती हैं, परन्तु सरलता, प्रमोद भावना, मैत्री और करुणा मन की प्रसन्नता के बड़े आधार हैं। मन में ऋजुता है और मंगलभावना है तो वह चित्त की प्रसन्नता का एक लक्षण है अन्यथा आदमी ईर्ष्या में जा सकता है। सब प्राणियों के प्रति मन में अहिंसा की भावना, मैत्री की भावना रहे। एक, दो, तीन से मैत्री होना अलग बात है और सबके प्रति मंगल मैत्री की भावना होना विराट मैत्री का उदाहरण होता है।

जो दुःखी प्राणी हैं, कष्टापतित प्राणी हैं, उनके प्रति करुणा की भावना रहे कि वे भी दुःख-मुक्त बनें, चित्तसमाधि को प्राप्त करें, परम सुखों को प्राप्त करें, मानसिक प्रसन्नता को प्राप्त करें।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

३

गलत प्रतिक्रिया से बचें

प्रेक्षाध्यान साधना की उपसंपदा के सूत्रों में एक सूत्र है—प्रतिक्रिया विरति। हमारे जीवन में कुछ ऐसी स्थितियां आती हैं, जिनके कारण हमारे मन में री-एक्शन हो जाता है। प्रतिक्रिया दो तरह की होती है। एक अच्छी प्रतिक्रिया और एक बुरी प्रतिक्रिया। किसी ने हमारा भला किया और हमने कृतज्ञता ज्ञापन किया, वह भी प्रतिक्रिया तो है किन्तु वह सकारात्मक और शुद्ध प्रतिक्रिया है। जहां हमारे मन में आक्रोश का भाव आ गया, प्रतिशोध की भावना आ गई, हमारा मन उद्वेलित हो गया, इसका मतलब है हमारे मन में नकारात्मक और अशुद्ध प्रतिक्रिया हुई है। यह आदमी की दुर्बलता है कि कोई भी घटना घटती है तो मन में री-एक्शन हो जाता है। जो साधक का जीवन स्वीकार कर चुका है, वह ऐसा अभ्यास करे कि अच्छी प्रतिक्रिया तो भले हो जाए, परन्तु गलत प्रतिक्रिया न हो यानी प्रतिशोध की भावना न जागे, आक्रोश का भाव न जागे। बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कुछ ऐसी ही बात कही गई है—

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति।।१/३।।

उसने मुझे डांटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मुझे लूट लिया—जो ऐसा मन बनाए रखते हैं, उनका वैर शांत नहीं होता।

श्रीमज्जयाचार्यप्रवर ने आराधना में सुन्दर कहा है—

पुन्य पाप पूरब कृत, सुख दुख नां कारण रे।
पिण अन्य जन नहीं, इम करै विचारण रे।।
भावै भावना।।

इस पद्य पर अनुचिन्तन करके हम प्रतिक्रिया अर्थात् री-एक्शन से काफी मुक्त रह सकते हैं। उन्होंने कहा कि तुम्हें सुख मिलता है या दुःख मिलता है, उसमें अहम भूमिका तुम्हारे अपने पूर्वकृत पुण्य-पाप की है। अगर आदमी के पाप का प्रबल उदय है तो किसी की ताकत नहीं कि उसको आने वाले दुःखों से मुक्त कर सके। जो पुण्य-पाप रूप कर्म बद्ध हैं, उनका जब उदय होता है तो वे आदमी को भोगने पड़ते हैं। इसलिए दूसरा कोई मुख्य रूप से जिम्मेवार नहीं है हमारे सुख या दुःख में। हमें सुख मिलता है तो मुख्य जिम्मेवार हम स्वयं हैं और दुःख के भी मूल जिम्मेवार हम स्वयं हैं। श्रीमद् जयाचार्य द्वारा रचित उपरोक्त पद्य अनुप्रेक्षा का एक सुन्दर आलम्बन है।

हमारे यहां साधना के विभिन्न प्रयोग चलते हैं। उनमें अनुप्रेक्षा का भी एक प्रयोग है। पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री महाप्रज्ञजी फरमाते थे कि जो समस्या हो उसके विपरीत अनुचिन्तन या अनुप्रेक्षा का प्रयोग करें। जैसे भय की समस्या है तो अभय की अनुप्रेक्षा, असामंजस्य है तो सामंजस्य की अनुप्रेक्षा, असहिष्णुता है तो सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा, अमैत्री का भाव है तो मैत्री की अनुप्रेक्षा करें। दसवेआलियं में भी ऐसा ही बताया गया है कि उपशम के द्वारा गुस्से को जीतो, मृदुता के द्वारा अहंकार को जीतो, ऋजुता के द्वारा माया को जीतो और संतोष के द्वारा लोभ को जीतने का प्रयास करो।

धम्मपदकार ने कहा कि आदमी के मन में जब ऐसा विचार आता रहता है कि उसने मुझे डांटा, पीटा, लूटा आदि-आदि। इसका मतलब है उसके प्रति हमारे मन में वैर भाव पुष्ट हो रहा है। इसलिए इस चिन्तन को छोड़ना चाहिए। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है—

हओ न संजले भिक्खू, मणं पि न पओसए।
तितिक्खं परमं नच्चा, भिक्खुधम्मं विचिंतए।।२/२६।।

पीटे जाने पर भी मुनि क्रोध न करे, मन में भी द्वेष न लाए। तितिक्षा को परम जानकर मुनि-धर्म का चिंतन करे।

कोई पीट दे, मार दे तो साधु संज्वलित न हो, प्रज्वलित न हो, आक्रोश न करे, गुस्सा न करे और मन में भी कहीं द्वेष भाव न लाए, उसे सहन करे। जो

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

हो गया वह हो गया। जो हो गए की चिन्ता नहीं करता, विचार नहीं करता, बात को छोड़ देता है, उसका वैरभाव भी शान्त हो जाता है। उसके मन में गलत रूप में प्रतिक्रिया नहीं होती है। आदमी के जीवन में ऐसे प्रसंग आ सकते हैं कि कोई गालियां दे देता है, कोई अपमान भी कर देता है, पर साधक की साधना यह होनी चाहिए कि उन सबको समता भाव से सहन कर सके।

एक साधु के लिए तो विशेष अपेक्षा है कि वह किस प्रकार क्षमा धर्म की आराधना करे और शांत रहे। जो गृहस्थ हैं, उनके लिए भी यह श्रेयस्कर है कि वे री-एक्शन यानी प्रतिक्रिया से बचें, गलत रूप में प्रतिक्रिया न करें। आयारो में सुन्दर कहा गया कि आदमी हर किसी बात को ग्रहण न करे। जब हम किसी घटना को अपने मन में बिठा लेते हैं तो फिर हमारे मन में राग-द्वेष का भाव आ सकता है। हमने घटना को मात्र शांत भाव से जान लिया, देख लिया, किन्तु भोगा नहीं तो हम राग-द्वेष से मुक्त रह सकते हैं। हर किसी बात को दिमाग में राग-द्वेष के साथ जमाना नहीं चाहिए। उसे दिमाग से निकाल देना चाहिए। ऐसा अभ्यास करने से अभ्यास सिद्ध भी हो सकता है। अभ्यास बड़ी चीज है। आदमी अभ्यास करते-करते सफलता को प्राप्त हो सकता है।

जहां प्रतिक्रिया ज्यादा होती है, वहां संबंध कटु बन जाते हैं और जहां एक दूसरे को सहन किया जाता है, वहां संबंध अच्छे बन जाते हैं। भले साधु संस्था हो या गृहस्थ-समुदाय, यदि प्रतिक्रिया से बचने का अभ्यास हो तो संबंध भी अच्छे रहते हैं और जीवन व्यवहार में शांति भी बनी रहती है।

परिवार में या दाम्पत्य जीवन में शांति है तो मानना चाहिए वह भी एक प्रकार की साधना है। अन्यथा लम्बे काल तक शांति के साथ रहना मुश्किल हो जाता है। दाम्पत्य जीवन सुखी तभी हो सकता है, जब पति-पत्नी एक दूसरे को सहन करने वाले हों, एक दूसरे के प्रति सद्भावना रखने वाले हों, एक दूसरे के प्रति सम्मान व स्नेह का भाव रखने वाले हों, एक दूसरे के प्रति निष्ठा रखने वाले हों और एक दूसरे के प्रति प्रतिबद्धता का भाव रखने वाले हों।

उत्तराध्ययनकार ने कहा कि कोई मारे पीटे तो भी साधु गुस्से में न आए, मन में भी द्वेष भाव न लाए और ऐसा ही संदेश धम्मपदकार ने दिया कि कोई डांट दे, पीट दे, लूट ले, हरा दे तो मन में गलत प्रतिक्रियात्मक विचार मत लाओ ताकि तुम्हारा वैर शांत रहेगा, वैर भाव पैदा ही नहीं होगा और होगा तो जल्दी शांत हो जाएगा। इसलिए आदमी को प्रतिक्रिया विरति की साधना का अभ्यास करना चाहिए।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

४

मैत्री से वैर शांत करें

आदमी के भीतर राग और द्वेष—ये दो वृत्तियां विद्यमान हैं। जो पुरुष इन वृत्तियों से अतीत हो जाता है, मुक्त हो जाता है, वह वीतराग बन जाता है। जब तक राग-द्वेष का भाव प्रबल बना रहता है तब तक मन में वैर भाव भी जागता है और बदला लेने की भावना भी पैदा होती है। बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया—

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीव कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो।।१/५।।

इस संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होते, अवैर (मैत्री) से ही शांत होते हैं—यह सदा का नियम है।

एक आदमी के मन में यदि दूसरे व्यक्ति के प्रति वैर का भाव है और दूसरा व्यक्ति पुनः उसका बुरा करता है तो वैर की परम्परा चलती रहती है। इस जन्म में किसी ने किसी का बुरा कर दिया तो हो सकता है अगले जन्म में भी उनके बीच शत्रुता का भाव बना रह जाए। यह वैर की परंपरा न केवल एक जन्म में बल्कि अनेक जन्मों तक भी चल सकती है। आचार्य भिक्षु ने इस अनुबंध की परंपरा पर प्रकाश डाला और कहा—वैर की भांति मित्रता की भी परंपरा चलती है। गंदगी के द्वारा गंदगी का नाश कैसे किया जाए? कीचड़ से लथपथ कपड़े को कीचड़ से ही धोने का प्रयास किया जाए तो उसकी सफाई कितनी और कैसे हो सकती है। इसी प्रकार वैर से वैर को शांत नहीं किया जा सकता। [illegible] अवैर का भाव आता है, मैत्री का भाव जागता है, तब वैर की परंपरा शांत होती है। जिस व्यक्ति का कोई बुरा करता है तो यह सोचे कि कोई खास बात नहीं है इसने बुरा किया, यह जाने, किन्तु मैं इसका वापस बुरा नहीं करूंगा, इसके प्रति अमंगल की भावना नहीं रखूंगा तो वैर की परंपरा वहीं समाप्त हो सकती है। अहिंसक व्यक्ति के संपर्क में हिंसक व्यक्ति आता है तो उसका हिंसा का भाव छूट जाता है। हालांकि मैं इसे आत्यन्तिक नियम तो नहीं मानता, फिर भी संभव है कि ऐसा हो जाए।

परम पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी महाराष्ट्र की यात्रा कर रहे थे। उस समय एक डाकू जैसा व्यक्ति संपर्क में आया। कुछ समय बाद जब वह दूसरी बार मिला, तब उसने बताया कि बाबाजी! अब मैंने वह काम छोड़ दिया है। मेरे पास सुपारी का प्रलोभन आया था, किन्तु मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। कहने का तात्पर्य है कि हिंसक भावना भी छूट सकती है।

डाकू बाल्मिकी ने एक बार संत को पकड़ लिया। संत ने सोचा, इसको समझाना चाहिए।

संत—तुम ऐसा किसके लिए करते हो?

बाल्मिकी—मैं अपने परिवार के लिए करता हूं। परिवार के लिए पैसा चाहिए।

संत—तुम परिवार के लिए ऐसे कर्म करते हो। जब इन पापकर्मों का फल तुम्हें भोगना पड़ेगा, तब क्या परिवार के लोग साथ आएंगे?

बाल्मिकी—हां, साथ आएंगे।

संत—पहले उनसे पूछो तो सही।

बाल्मिकी उस साधु को पेड़ से बांधकर अपने परिवार के पास गया और कहा—मैं इतना पैसा तुम लोगों के लिए लूटकर लाता हूं। मुझे इन लूट के अथवा चोरी के पापों का फल मिलेगा तब तुम मेरे साथ रहोगे ना? परिवार के लोगों ने कहा—हम तो कोई साथ नहीं रहेंगे। हम तो माल खाने में तुम्हारे साथ हैं, मार खाने में कोई साथ नहीं हैं। बाल्मिकी ने सोचा कि फिर मैं क्यों इतना पाप करूं? संतों की संगति से बाल्मिकी का मन बदल गया और एक दिन रामायण का रचयिता बन गया।

Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

किसी के द्वारा बुरा किए जाने पर हम भी उसके प्रति बुरा करने वाले बन जाएं अथवा किसी के द्वारा गाली देने पर हम भी वापस गालियां देने लग जाएं तो हमारा बड़प्पन कहां रहा? हमें तो करुणापूर्ण, मैत्रीपूर्ण व्यवहार से उसका जवाब देना चाहिए।

५

जीवन की नश्वरता

कुछ लोग अपने जीवन के बारे में अच्छी तरह सोच नहीं पाते। किन्तु कुछ लोग इतने विवेक सम्पन्न होते हैं कि वे अपने बारे में, अपनी आत्मा के बारे में यथासमय विचार करते रहते हैं। बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा।।१/६।।

अनाड़ी लोग इसका ख्याल नहीं करते कि हम इस संसार में नहीं रहेंगे। जो इसका ख्याल करते हैं, उनके सारे कलह शांत हो जाते हैं।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो यह नहीं सोच पाते कि हमें कभी यहां से जाना भी है। आयारो में एक सूक्त आता है—'अमरायई महासड्ढी' अर्थात् जो महान् आसक्ति वाले लोग होते हैं, वे इस तरह का आचरण करते हैं कि मानो दुनिया में अमर बनकर आए हैं। कुछ लोग अनित्यता का चिन्तन करने वाले भी होते हैं। वे सोचते हैं कि हमें कभी यहां से विदा होना है। यह शरीर अनित्य है, अशुचिमय है। इसलिए इस शरीर से ऐसे कार्य करें जिससे आत्मा का हित सिद्ध हो सके। धम्मपदकार ने कहा—जो आत्मा पर ध्यान देने लग गया, उसका झगड़ा, कलह, राग, द्वेष सब कमजोर पड़ने लग जाएंगे, शांत होने लग जाएंगे।

हमारी दुनिया में कोई भी आदमी स्थायी नहीं है। सब राही हैं। हमारी आत्मा भी संसारी अवस्था में राही बनी हुई है। एक जन्म के बाद दूसरा जन्म प्राप्त होता रहता है। जो जन्मा है उसके लिए मौत निश्चित है और जो मरा है

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

तो संसारी अवस्था में उसका पुनर्जन्म भी निश्चित है। जन्म और मृत्यु एक सर्किल है, जिसमें आत्मा भ्रमण करती रहती है और बीच-बीच में योनियां मिलती हैं उनमें थोड़ा-सा विराम ले लेती है, फिर आत्मा आगे बढ़ जाती है। आत्मा से बड़ा कोई यात्री मिलना मुश्किल है। हमारी दुनिया में बड़े-बड़े यात्री हैं, पर सबसे बड़ा यात्री जीव है। यह जितनी यात्रा करता है, दूसरा कोई नहीं कर सकता। आदमी भारत से अमेरिका तक जा सकता है, संपूर्ण विश्व की यात्रा कर सकता है पर आत्मा तो मनुष्य से देवलोक में चली जाती है, देवलोक से मनुष्य लोक में आ जाती है, कभी नरक में चली जाती है। इतनी लम्बी दूरी यह आत्मा ही पाट सकती है। इसलिए मुझे लगता है महायात्री कोई है तो आत्मा है। वह स्थूल देह के बिना यात्रा करती है।

धम्मपदकार के अनुसार जीवन के अवसान का बोध कइयों को होता है, कइयों को नहीं होता। आदमी जब जीवन के अवसान की ओर ध्यान देगा, तब वह पापों से बचने का प्रयास करेगा। यदि अमर मान लेगा तो फिर डर की कोई बात ही नहीं रहेगी। जब आदमी अपने आपको मरणधर्मा अनुभव करेगा, तभी उसके मन में कुछ पाप से बचने की बात आएगी। जैसे आदमी श्मशान में जाता है, किसी शव को देखता है तो एक बार मन में आता है कि जीवन का इस प्रकार अवसान होता है। मुझे भी एक दिन इस प्रकार जाना पड़ेगा। इसलिए अब मैं जीवन में पाप नहीं करूंगा। एक वैराग्य का भाव पैदा होता है। बाद में वापस जब घर में आता है, धन्धे में लग जाता है तो वह वैराग्य भाव प्रायः चला भी जाता है। इसीलिए इसका नाम पड़ गया मसाणिया बैराग। श्मशान में जो एक बार होता है और फिर चला जाता है उसे मसाणिया बैराग कहा गया। भले क्षण भर के लिए ही आया, पर एक बार तो वैराग्य आ ही गया। अभी क्षण भर के लिए आया है तो कभी लम्बे काल के लिए भी आ सकता है और आदमी विरक्ति के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में भी जीवन की नश्वरता को बताते हुए कहा गया है—

इइ इत्तरियम्मि आउए, जीवियए, बहुपच्चवायए।
विहुणाहि रयं पुरेकडं, समयं गोयम! मा पमायए।।१०/३।।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

यह आयुष्य क्षणभंगुर है, यह जीवन विघ्नों से भरा हुआ है। इसलिए हे गौतम! तू पूर्व संचित कर्म-रज को प्रकम्पित कर और क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

इस संसार में धन, परिवार, सुख-दुःख सब अनित्य हैं। अनित्यता का चिन्तन हमारी मूर्च्छा को तोड़ने में, मोह भाव को कमजोर बनाने में सहायक बनता है। क्योंकि चिन्तन में शक्ति होती है। आदमी जैसा आचरण करता है, उससे पहले विचार और उससे पहले भाव काम करता है। बाहर युद्ध होता है तो पहले दिमाग में युद्ध का विचार आएगा, फिर आदमी बाहर युद्ध करेगा। इसका मतलब यह हुआ कि बाहर जो हम आचरण करते हैं उसका स्रोत हमारे भीतर है। हम उस भीतर के स्रोत पर ध्यान दें। आयारो में कहा गया—यह प्राणी अनेक चित्तों वाला है। उसकी चित्त की वृत्तियां बदलती रहती हैं। प्रातः जो शान्त था, उसे मध्याह्न में गुस्से में देखा जा सकता है। जो कभी नम्रतापूर्वक बात करता था, उसे कभी उद्दंडता में भी देखा जा सकता है। जो कभी संतोषी वृत्ति वाला था, उसे कभी लालची वृत्ति वाले के रूप में भी देखा जा सकता है। जो कभी सरलता से युक्त लग रहा था, उसे कुटिलता करते हुए भी देखा जा सकता है। धम्मपदकार की इस अनित्यता को जानकर आदमी इन विभिन्न वृत्तियों में परिष्कार करने का प्रयास करे। आदमी लोभान्धता, कामान्धता, मोहान्धता को भी छोड़ने का प्रयास करे। जब पूर्णतया मोह छूट जाएगा, परम ज्ञान रूप प्रकाश की प्राप्ति हो जाएगी।

६

काम को करें परास्त

हमारी दुनिया में काम और क्रोध दो मौलिक वृत्तियां हैं। कभी हम काम से आक्रान्त हो जाते हैं तो कभी क्रोध हमें आक्रान्त कर देता है। बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में बताया गया है—

सुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवुतं।
भोजनम्हि अमत्तञ्ञुं कुसीतं हीनवीरियं।
तं वे पसहति मारो वातो रुक्खं'व दुब्बलं।।१/७।।

शुभ (रूप सौन्दर्य) को देखते हुए विहार करने वाले, इन्द्रियों में असंयत, भोजन में मात्रा न जानने वाले, आलसी और उद्योग-हीन पुरुष को मार वैसे ही गिरा देता है, जैसे वायु दुर्बल वृक्ष को।

जो आदमी भौतिक पदार्थों को देखने में लगा रहता है, जिसके इन्द्रियों का संयम नहीं है, जो भोजन की मात्रा को नहीं जानने वाला है, जो आलसी है, जो पुरुषार्थहीन है, ऐसे व्यक्ति को काम उसी प्रकार गिरा देता है, परास्त कर देता है, जैसे दुर्बल वृक्ष को वायु। जब तेज आंधी आती है तो अनेक वृक्ष गिर जाते हैं। इसी प्रकार जब आदमी में काम उद्दीप्त हो जाता है तो उसका पतन हो जाता है। वह शरीर से गिरे या न गिरे, किन्तु जीवन के स्तर से और आत्मा के स्तर से गिर जाता है।

धम्मपद में कई बातें बताई गईं। उनमें एक बात है—रूप-सौन्दर्य को देखने में लगे रहना। आंख का तो व्यापार है देखना। आंख से उपयोगी चीजों को भी देखा जा सकता है और रागवर्द्धक चीजों को भी देखा जा सकता है। साधु के लिए तो दृष्टि-संयम काक्ष्य है ही, एक गृहस्थ के लिए भी दृष्टि-संयम की अपेक्षा रहती है। यह ध्यातव्य है कि उसकी दृष्टि किधर और कहां जा रही है। जैसे किसी पुरुष की अन्य स्त्रियों के प्रति दृष्टि जा रही है। किसी स्त्री की अन्य पुरुषों के प्रति आसक्तिपूर्ण दृष्टि जा रही है। यह दृष्टि का असंयम है। जो दृष्टि का संयम नहीं रखता, काम उसे परास्त कर सकता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—

रूवेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे से जह वा पयंगे, आलोयलोले समुवेइ मच्चुं।।३२/२४।।

जो मनोज्ञ रूपों में तीव्र आसक्ति करता है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है, जैसे प्रकाश-लोलुप पतंगा रूप में आसक्त होकर मृत्यु को प्राप्त होता है।

आदमी को दृष्टि का संयम रखने का अभ्यास करना चाहिए। हम दृष्टि के द्वारा अच्छे ग्रन्थ पढ़ सकते हैं। दृष्टि के द्वारा गुरुओं के, साधुओं के दर्शन कर सकते हैं। दृष्टि के द्वारा अनिमेष प्रेक्षा 'त्राटक' की साधना भी की जा सकती है। ये दृष्टि के अच्छे उपयोग हैं। दृष्टि से सामान्य कार्य भी आदमी करता है। दृष्टि का अच्छे कार्यों में उपयोग करना अच्छा है ही, सामान्य रूप में उपयोग करना भी बुरी बात नहीं, पर जो रागात्मक और सीमा से बाहर दृष्टि का असंयम होता है, वह आदमी के लिए पतन का कारण बन सकता है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों का असंयम भी आदमी को गिरा सकता है।

जो भोजन में मात्रा का विवेक नहीं रखता है। मनोज्ञ भोजन सामने आने पर खूब खा लेता है, यह भोजन की मात्रा का अविवेक होता है। हालांकि सबके लिए एक समान मात्रा नहीं होती, परंतु आदमी अपने शरीर के अनुसार अपनी मात्रा का ध्यान रखे कि मुझे कितनी भूख है, कितनी जरूरत है और कितना मुझे खाना चाहिए। अगर आदमी में विवेक है तो जितनी भूख है, उससे ज्यादा खाने का प्रयास नहीं करेगा। आदमी खाने में कुछ कमी करे, यह ऊनोदरी का अभ्यास शरीर के लिए लाभदायी होता है और एक तपस्या का प्रयोग भी है। यदि मात्रा का विवेक रखे तो काम से परास्त होने की संभावना

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

कुछ कम हो जाएगी। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए नवबाड़ बताई जाती है। उनमें एक बाड़ है अतिमात्र भोजन का वर्जन। अतिमात्र भोजन करना भी साधना में बाधा है। अतिमात्रभोजी को काम परास्त कर सकता है। आमतौर से रत्न आदमी को नहीं खोजता। आदमी खोज करे तो कोई रत्न मिल सकता है। ट्रेन, प्लेन आदि यात्री की प्रतीक्षा नहीं करते, यात्री को पुरुषार्थ करके वहां पहुंचना पड़ता है। तब उसमें यात्रा की जा सकती है। जहां आलसीपन है, वहां काम हावी हो सकता है और वह व्यक्ति को परास्त कर सकता है। काम एक ऐसा तत्त्व है जो आदमी में ही नहीं, पशु में भी होता है।

जहां शक्तिहीनता है, वहां बाह्य या अन्तरंग वृत्तियां आदमी पर आक्रमण कर सकती हैं। संयम के लिए भी शक्ति चाहिए, पराक्रम चाहिए। वह नहीं है तो मार और असंयम आदमी को परास्त करने में सफल हो सकते हैं।

जिसने अपना जीवन साधना के लिए समर्पित कर दिया, वह सोचे कि मेरे में तो ये बातें नहीं हैं ना? अगर ये बातें हैं तो मुझे साधना में खतरे का सामना करना पड़ सकता है। मैं इन चीजों से मुक्त रहूं। मुक्त रहने के लिए अभ्यास की अपेक्षा होती है और चिन्तन की दिशा को बदलने की अपेक्षा होती है। साधक अभ्यास के द्वारा काम आदि को परास्त करने का प्रयास करे।

७

मार-मुक्ति की साधना

बौद्ध धर्म के महान् ग्रन्थ धम्मपद में मार के प्रसंग में बताया गया है कि किस व्यक्ति को मार अथवा काम आक्रान्त करता है और किसको आक्रान्त नहीं कर सकता। वहां बताया गया है–

असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवुतं।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं सद्धं आरद्धवीरियं।
तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं'व पब्बतं।।१/८।।

अशुभ (रूप की कुरूपता) को देखते हुए विहार करने वाले, इन्द्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जानने वाले, श्रद्धावान् और उद्योगी पुरुष को मार वैसे ही नहीं डिगा सकता, जैसे वायु शिलामय पर्वत को।

जो व्यक्ति रूप को देखता है, पदार्थों को देखता है, किन्तु उसमें आसक्ति नहीं करता, पदार्थों में गृद्धि नहीं करता और रूप में अशुचिता का दर्शन करता है, उसे काम आक्रान्त नहीं करता। धम्मपदकार ने कहा कि रूप में अशुभ का अवलोकन करो। जो अच्छा लगे उसमें भी जो कमी है उसको देखो। उससे रूप के प्रति मन में आसक्ति नहीं बढ़ेगी। पदार्थों में या रूपों में आसक्ति न आए, ऐसा अभ्यास करने वाले व्यक्ति को और इन्द्रियों से सुसंयत रहने वाले व्यक्ति को काम आक्रान्त नहीं कर सकता।

हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियों में जीभ को जीतना बड़ा मुश्किल माना गया है, दुर्जेय माना गया है। साधना के लिए और काम-मुक्ति की आराधना के लिए जिह्वा का संयम करना आवश्यक होता है। जो भोजन में मात्रा का ज्ञान रखने

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

वाला है और जो जीभ के लिए नहीं, शरीर की अपेक्षा के लिए खाने वाला है, उस व्यक्ति को काम आक्रान्त करने से सकुचाता है। जिसमें विशिष्ट श्रद्धा होती है, साधना के प्रति समर्पण होता है और अपने साधना के पथदर्शक के प्रति गहरी सम्मान की भावना होती है, वह काम के आक्रमण से बचने का एक उपाय हस्तगत कर लेता है।

एक युवक संन्यासी के पास आया और बोला—बाबाजी! मैं आपका चेला बनना चाहता हूं।

गुरु—ठीक है, तुम्हारी भावना है तो मैं तुम्हें चेला बना सकता हूं।

युवक—बाबाजी! मैं कभी-कभी चोरी करता हूं। इस आदत को ध्यान में रखते हुए आप चाहें तो मुझे शिष्य बना लें।

गुरु—ठीक है, तुम चेला बन सकते हो।

युवक—बाबाजी! एक बात और आपको बता देता हूं। मैं शराब पीने का आदी भी हूं।

गुरु—कोई खास बात नहीं है, तुम चेला बन सकते हो।

युवक—एक बात और आपके ध्यान में ला देता हूं। मैं यदाकदा वेश्यागमन भी करता हूं। आप चाहो तो मुझे दीक्षा दे दो।

गुरु ने तीन बड़ी कमजोरियों को जानते हुए भी उसको साधु बना लिया, दीक्षा दे दी। दीक्षान्त भाषण में गुरु ने कहा—तुम्हारी तीन कमजोरियों को जानते हुए भी मैंने तुमको साधु बना लिया है, किन्तु अब एक बात पर तुमको ध्यान देना होगा। गुरु के देखते हुए कोई गलत काम मत करना।

शिष्य—गुरुदेव! आपके सामने मैं कभी भी गलत काम नहीं करूंगा। यह मेरा संकल्प है।

पांच-सात दिन बीते और शराब पीने की इच्छा हो गई। गुरु से बिना पूछे शाम को निकला और शराब की दुकान में चला गया। साधु का वेश था। इसलिए दुकानदार ने भी बिना पैसे लिए एक बोतल उसके हाथ में थमा दी। बोतल का ढक्कन खोलने लगा, तब उसको लगा कि मेरे भीतर तो गुरुदेव विराजमान हैं। वे मेरे हाथ में शराब की बोतल देख रहे हैं। मैंने तो गुरुदेव को वचन दिया था कि आपके देखते कोई गलत काम नहीं करूंगा। फिर मैं शराब कैसे पी सकता हूं। बोतल वापस दे दी और अपने स्थान पर आ गया। कुछ दिन बाद चोरी करने के लिए रात को निकल पड़ा। किसी बड़े मकान के पास गया, ताला तोड़ने की बात सोच रहा था, तभी उसे लगा कि भीतर में गुरुदेव विराजमान हैं। गुरुदेव मुझे देख रहे हैं कि मैं चोरी करने यहां आया हूं। गुरुदेव को तो मैंने वचन दिया था कि आपके देखते गलत काम नहीं करूंगा। फिर मैं चोरी कैसे कर सकता हूं। वह अपने प्रवास-स्थल पर लौट आया।

कुछ दिन बाद काम ने आक्रमण किया। रात को उठा और चल पड़ा वेश्या के घर की ओर। घर के समीप पहुंचते ही उसके पैर थम गए। उसे लगा कि गुरुदेव मुझे देख रहे हैं, अब मैं आगे कदम नहीं बढ़ाऊंगा। वह वापिस आ गया। एक महीना बीत गया। उसकी सारी वृत्तियां बदल गईं। अब न चोरी करने का संकल्प मन में जागता, न शराब का और न वेश्यागमन का। एक दिन गुरु ने पूछा—अब तुम्हारी क्या स्थिति है?

शिष्य—गुरुदेव! मैंने प्रमाद की दिशा में कुछ कदम आगे बढ़ाए थे, किन्तु वह प्रमाद मैंने नहीं किया। अब मुझे विश्वास है कि जिंदगी में वे गलतियां मेरे से कभी नहीं होंगी। गुरुदेव! मेरे मन में जिज्ञासा है कि इतने विकृत मानस वाले युवक को आपने दीक्षा देने का साहस कैसे कर लिया?

गुरु—वत्स! मैं जानता था कि तुम्हारे में ये कमजोरियां तो हैं, पर तुम्हारे मन में श्रद्धा मजबूत है। यह मजबूत श्रद्धा तुम्हारी रक्षा करेगी, तुम्हें गलतियों से बचाएगी। यह मुझे विश्वास हो गया, तब मैंने दीक्षा देने का साहस किया।

धम्मपदकार ने भी यही कहा कि जो श्रद्धाशील होता है, उस पर काम बहुत जल्दी आक्रमण नहीं कर सकता यानी श्रद्धाशील का बचाव हो सकता है। आदमी को अपनी शक्ति का गोपन नहीं करना चाहिए। शक्ति हो तो अच्छे कार्यों में उसका प्रयोग करना चाहिए। आगम में कहा गया—'सिद्धाणं अवीरया' अर्थात् सिद्धों में वह वीर्य नहीं होता जो संसारी प्राणी में होता है। क्योंकि सिद्धों के शरीर नहीं होता। इसलिए शरीर में जो वीर्य प्रकट होता है,

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

जो शक्ति प्रकट होती है, वह सिद्धों में नहीं हो सकती। उनमें आत्मिक बल तो हो सकता है, किन्तु शरीर का बल नहीं होता। जो शारीरिक शक्ति का प्रयोग अच्छे कार्यों में करने वाला होता है, वह व्यक्ति काम के आक्रमण से बच सकता है। जो पुरुषार्थहीन है या ऐशोआराम में रहने वाला है, उस पर काम जल्दी आक्रमण कर सकता है। शक्ति का होना एक बात है, किन्तु आदमी शक्ति का उपयोग क्या करता है, यह ध्यान देने की बात है। दुरुपयोग और सदुपयोग दोनों मार्ग सामने हैं। आदमी दुरुपयोग से शक्ति को बचाए और सुदपयोग में उसका नियोजन करे।

वीर्य का सुदपयोग करने का मतलब स्वाध्याय करना, सेवा करना, तपस्या करना, ध्यान करना, धर्मोपदेश देना आदि है। इस प्रकार आदमी शक्ति का उपयोग करता रहे। जो शक्ति का उपयोग नहीं करता, निठल्ला पड़ा रहता है। उसकी शक्ति उपयोगी नहीं बनती, अच्छा उपयोग नहीं होता। जो व्यक्ति उपरोक्त बातों से सम्पन्न है, उस पर काम उसी प्रकार आक्रमण नहीं कर सकता, जैसे मजबूत चट्टान या मजबूत शिलामय पर्वत पर हवा का असर नहीं होता। छोटी-मोटी चीज को तो हवा उड़ा सकती है, किन्तु मजबूत शिलामय पर्वत को तेज हवा भी हिला नहीं सकती। इसी प्रकार जो व्यक्ति काम-विरक्ति की साधना के लिए इन बातों को स्वीकार कर लेता है, उसका मानस इतना मजबूत चट्टान वाला बन जाता है कि कोई भी निमित्त मिल जाए, परन्तु उसके मन पर असर नहीं होता।

आदमी उपादान कारण से बचने का प्रयास तो करे ही, साथ में निमित्त कारण से भी बचने का प्रयास करे तो वह काम-मुक्ति की साधना में सौफल्य प्राप्त कर सकता है।

८

वेश के अनुरूप साधना

भारतीय धर्म परम्पराओं में साधु-संस्था का बड़ा सम्माननीय स्थान है। विभिन्न साधना-पद्धतियों और विभिन्न सम्प्रदायों से जुड़े हुए साधु-संन्यासी अपने ढंग से काम करते हैं। हम लोग जैन परम्परा के श्वेताम्बर साधु हैं। इसलिए श्वेत वस्त्रों को धारण करते हैं। हालांकि भगवान् पार्श्व के समय तो अन्य रंगों के कपड़े भी धारण किए जाते थे। भगवान् महावीर की शासन-परम्परा में सवस्त्र साधना करने वाले साधु-साध्वियां सामान्यतया श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। ऐसे साधु-संन्यासी भी हैं, जो अन्य रंगों के कपड़े भी धारण करते हैं, गेरुआ वस्त्र भी धारण करते हैं, पीले वस्त्र भी धारण करते हैं। वस्त्र तो शरीर की सुरक्षा के लिए हैं, किन्तु साथ में वेशभूषा से पता भी चल सके कि यह कोई संन्यासी है। अतः संन्यास का द्योतक भी वस्त्र बनता है। वस्त्र साधु का पहन लिया और साधना नहीं है तो मात्र कपड़ा कितना कल्याण कर पाएगा। कदाचित् वस्त्र तो कोई सा भी पहना हुआ हो, पर साधना वृद्धिंगत हो गई तो कल्याण हो जाएगा। गृहस्थ के वेश में भी वीतरागता आ गई तो कल्याण हो जाएगा। यद्यपि वस्त्र का साधना के साथ भी संबंध है। श्वेत वस्त्र इस बात की प्रेरणा देने वाला है कि मैं उज्ज्वल, निर्मल बना रहूं। धम्मपद में कहा गया—

अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति।
अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमरहति।।१/९।।

जो बिना चित्तमलों को हटाए काषाय वस्त्र धारण करता है, वह संयम

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

और सत्य से हीन काषाय वस्त्र का अधिकारी नहीं है।

कोई व्यक्ति काषाय वस्त्र धारण कर लेता है, परन्तु उसमें निष्कषायता की साधना नहीं है, संयम और सत्य नहीं है तो वह व्यक्ति साधु वेश या काषाय वस्त्र धारण के अर्ह नहीं होता है। वेश साधु का लिया है तो परिवेश भी साधु का होना चाहिए, साधना भी साथ में होनी चाहिए, अन्यथा तो जनता के साथ धोखा हो जाता है। जीवन में संयम की साधना हो तब तो संन्यासी का वेश ठीक है।

एक कुत्ता कहीं जा रहा था। उसने देखा कि एक फकीर खड़ा है। वह निर्भीकता के साथ अपनी पूंछ हिलाते हुए फकीर के पास से गुजरने लगा। वह कीचड़ से आया था। इसलिए कुछ छींटे फकीर के अधोवस्त्र के लग गए। फकीर को गुस्सा आ गया। उसने कुत्ते को खूब पीटा। कुत्ता वहां से भाग गया। कथानक बताता है कि कुत्ता सीधा कोर्ट में गया और न्यायाधीश से कहा—मेरे साथ अन्याय हुआ है। एक साधु ने मुझे पीटा। मेरे साथ इन्साफ होना चाहिए। न्यायाधीश ने उस साधु को बुलाया। साधु कोर्ट में हाजिर हुआ।

जज ने कुत्ते से कहा—तुम्हारे साथ क्या हुआ?

कुत्ता—मुझे इस साधु ने पीटा था।

जज (साधु से)—तुमने कुत्ते को क्यों पीटा?

साधु—इसने गन्दे छींटे उछालकर मेरे कपड़े खराब कर दिए। इसलिए मुझे गुस्सा आ गया और मैंने इसको पीट दिया।

जज (कुत्ते से)—तुमने छींटे क्यों उछाले?

कुत्ते—माइलॉर्ड! मैंने जानबूझकर छींटे नहीं उछाले थे। मैं तो अपनी मस्ती में जा रहा था। छींटे उछल गए होंगे।

साधु—इसे यह देखकर चलना चाहिए था कि पास में कौन खड़ा है?

जज (कुत्ते से)—अब तुम क्या चाहते हो?

कुत्ता—जज साहब! अगर कोई सामान्य आदमी खड़ा होता तो मैं उसके पास से नहीं गुजरता। मुझे भी अपने शरीर की चिन्ता रहती है कि कोई पीट न दे। किन्तु मैंने देखा कि कोई संत-महात्मा खड़ा है। संत तो अहिंसा का पुजारी होता है। वह तन से, मन से, वचन से, किसी को तकलीफ नहीं देता। साधु के निकट जाने में मुझे कोई खतरा नहीं है। वहां तो मुझे प्रेम मिलेगा, स्नेह मिलेगा, मैत्री मिलेगी। मैंने तो साधु का वेश देखकर इसका विश्वास किया और इसके पास से गुजरा, किन्तु मेरे साथ तो विश्वासघात हो गया।

जज—कुत्ते! तुम्हारी बात ठीक है। यह साधु की गलती है कि इसने तुमको पीटा। अब तुम्हारे अनुसार इस साधु को क्या दण्ड दिया जाना चाहिए?

कुत्ता—माइलॉर्ड! मैं नहीं चाहता कि इसे जेल में डाला जाए या इसे पीटा जाए। मैं चाहता हूं कि इसका साधु का वेश उतार दिया जाए ताकि आगे किसी के साथ वेश के कारण धोखा न हो।

धम्मपदकार ने कहा—कोई साधु काषाय वस्त्र धारण करे, साथ में संयम की साधना न हो, सत्य की साधना न हो तो फिर वस्त्र के साथ भी अन्याय हो जाता है। वेश परिवर्तन के साथ क्लेश परिवर्तन, परिवेश परिवर्तन भी होना चाहिए। तब तो वेश की लज्जा रह सकेगी, अन्यथा वेश भी शर्मिन्दगी महसूस करेगा।

अगर साधक लक्ष्यपूर्वक अपनी साधना की दिशा में आगे बढ़े, संयम का अभ्यास करे तो साधना का एक विशेष आनंद मिलता है, आत्मोपलब्धि का क्रम बन जाता है। इसलिए धम्मपदकार ने संयम और सच्चाई की साधना की बात कही। जैन साहित्य में भी यही कहा गया कि यह ऊपर का वेश तो बहुत छोटी बात है। मुख्य बात साधु की साधना है। दिगम्बर होने मात्र से या श्वेत कपड़े पहनने मात्र से किसी को मुक्ति नहीं मिल सकती। केवल तार्किक बनने मात्र से या केवल तात्त्विक बनने मात्र से भी मुक्ति नहीं मिल सकती। केवल अपने पक्ष का आश्रय लेने मात्र से भी मुक्ति नहीं होगी। तब प्रश्न किया गया कि फिर मुक्ति कैसे मिलेगी? समाधान दिया गया—'कषायमुक्तिः किलमुक्तिरेव' अर्थात् कषायों से मुक्ति मिल गई तो समझना चाहिए कि मोक्ष प्राप्त हो सकेगा। केवल वेश सब कुछ नहीं है। वेश के साथ साधु में साधना का अभ्यास होना चाहिए, प्रामाणिकता होनी चाहिए, सरलता होनी चाहिए।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

जिसमें संयम का अभ्यास है, सत्य का अभ्यास है और जिसने चित्त की चंचलताओं का त्याग कर दिया, कषायों को छोड़ने का अभ्यास कर लिया, वह व्यक्ति काषायवस्त्र, जैन परम्परा के अनुसार श्वेत वस्त्र, दिगम्बर परम्परा के अनुसार नग्नत्व धारण के लायक होता है। वस्त्र काषाय हो या श्वेत हो, यह गौण बात है। मूल बात है कि साधु का जो वेश निर्धारित है, उसे धारण करने के लायक वह व्यक्ति होता है जो अपने आचरणों से वेश की गरिमा को बढ़ाने का प्रयास करता है।

भक्त ने भगवान् से कहा—प्रभो! मैं आपकी भक्ति करता हूं, मेरी आपसे प्रार्थना है कि जहां अविवेकी लोगों का जो प्रेम विषय-भोगों में होता है, वहीं मेरी प्रीति आपसे जुड़े, आत्मा से जुड़े। एक साधक की प्रीति आत्मा के साथ हो, परमात्मा के साथ हो, परन्तु विषय-भोगों के साथ न जुड़े।

धम्मपदकार ने साधु की कई कसौटियां बता दीं। यदि इन कसौटियों में वह खरा उतरता है तब तो उसका वेश उसके अनुरूप है। यदि वे बातें साधु में नहीं हैं तो वेश भले उसने साधु का धारण किया हो, किन्तु वास्तव में उसमें साधना का तेज नहीं होता है। साधु स्वयं की साधना करे और जितना संभव हो दूसरों का भी कल्याण करने का प्रयास करे तभी साधु-जीवन की सार्थकता होगी।

९

सार को प्राप्त करें

प्रश्न होता है कि इस दुनिया में सारभूत तत्त्व क्या है? अध्यात्म-प्रधान दृष्टि वाले व्यक्ति का उत्तर है सत्य सारभूत है। इससे जीवन का कल्याण होता है। भोगप्रधान दृष्टि वाले व्यक्ति का उत्तर है—

सत्यं तथ्यं च सारं च यथार्थं च वदाम्यहम्।
अस्मिन्नसारे संसारे सारं सारंगलोचना।।

मैं सत्य, यथार्थ और सारपूर्ण बात कह रहा हूं कि इस असार संसार में स्त्रियां ही सारभूत हैं यानी भोग ही सारभूत है। इस सार-असार के संदर्भ में बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में भी चर्चा प्राप्त होती है। वहां बताया गया है—

असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो।
ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कप्पगोचरा।।१/११।।

जो असार को सार और सार को असार समझते हैं, वे मिथ्या संकल्प में पड़े (व्यक्ति) सार को प्राप्त नहीं करते हैं।

जो व्यक्ति असार को सार मान लेता है और जो सारभूत चीज है उसको असारभूत मान लेता है इसका मतलब वह मिथ्यादृष्टिकोण वाला व्यक्ति है। ऐसा मिथ्यादृष्टिकोण वाला व्यक्ति सार को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। इसके विपरीत जो व्यक्ति सारपूर्ण बात को सारपूर्ण मानता है और असारपूर्ण को असारपूर्ण मानता है, वह व्यक्ति सार को प्राप्त कर सकता है। उसका दृष्टिकोण सम्यक् होता है। प्रश्न होता है कि सार क्या है और असार क्या है?

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

कोई मानक तो चाहिए, जिसके आधार पर निर्णय करें कि यह सारभूत है और यह असारभूत है। हमारा जीवन दो तत्त्वों का योग है—आत्मा और शरीर। शरीर का स्वभाव है नष्ट हो जाना। किन्तु आत्मा को स्थायी कहा गया। शरीर विनाशी है और आत्मा अविनाशी है। जो स्थायी लाभ दे, उसे हम सारभूत मानें और अस्थायी लाभ को असारभूत मानें। इस आधार पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि भोग निस्सार है और त्याग सारभूत है। झूठ बोलना निस्सार है और यथार्थवादिता सारभूत है। असंयम असारभूत है और संयम सारभूत है। धम्मपद में जो कहा गया उसका सारांश यही लगता है कि जो स्थायी चीज है और जिसके द्वारा स्थायी का कल्याण होता है वह दुनिया में सारभूत है। यही बात जैन वाङ्मय में कही गई है—'सच्चं लोयम्मि सारभूयं' अर्थात् सत्य लोक में सारभूत है। क्योंकि उसके द्वारा आत्मा का हित सधता है और आदमी को सही जानकारी भी प्राप्त होती है। संयम सारभूत है। क्योंकि संयम होगा तो स्थायी आत्मा का कल्याण होगा। आदमी के सामने दो चीजें हैं एक पैसा और दूसरा चरित्र। संस्कृत शब्दकोश में दो शब्द आते हैं—वित्त और वृत्त। वित्त का अर्थ है धन और वृत्त का अर्थ है चरित्र। चरित्र की प्रयत्नपूर्वक सुरक्षा करो। क्योंकि धन तो आता है और चला जाता है। यदि धन से विहीन भी हो गया तो भी वह अक्षीण है अगर उसके पास चरित्र है तो। यदि चरित्र चला गया तो समझो वह नष्ट हो गया। अंग्रेजी साहित्य में कहा गया—इफ वैल्थ इज लोस्ट नथिंग इज लोस्ट, धन चला गया तो कुछ भी नहीं गया। हैल्थ इज लोस्ट समथिंग इज लोस्ट, अगर स्वास्थ्य चला गया तो कुछ चला गया। करेक्टर इस लोस्ट एवरीथिंग इस लोस्ट, अगर चरित्र चला गया तो सब कुछ चला गया।

एक नास्तिकवादी या भौतिक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति भौतिकता को ही सार मान लेता है। वह कहता है—जो कुछ भी है वह यहीं है। आगे-पीछे कुछ नहीं है। संस्कृत साहित्य में कहा गया—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य, अध्रुव परिसेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव हि।।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

जो व्यक्ति ध्रुव आत्मा की बात को छोड़कर केवल अशाश्वत या अध्रुव शरीर में लग जाता है या भोगों में लग जाता है तो अध्रुव तो नष्ट होगा ही।

वह ध्रुव आत्मा के कल्याण से भी वंचित रह जाता है। इस रूप में ध्रुव का भी नाश हो जाता है। जो व्यक्ति अध्यात्म या आत्मा को सार मानने वाला है, कल्याण को सार मानने वाला है, उसके लिए अपेक्षा है कि वह स्थायी पर केन्द्रित रहे। भगवती सूत्र में कहा गया—जो अस्थिर है उसमें परिवर्तन होता है, जो स्थिर है उस अंश में परिवर्तन नहीं होता। नित्यानित्यवाद का यह सिद्धान्त है कि आत्मा नित्य है। हालांकि उसके भी पर्याय परिवर्तन होते हैं, परन्तु फिर भी आत्मा के असंख्य प्रदेश स्थायी हैं। उनमें से एक भी कम नहीं होगा, एक भी ज्यादा नहीं होगा। हम ऐसा काम करें, जिससे स्थायी आत्मा का कल्याण हो। हम ऐसा कोई काम न करें, जिससे आत्मा का अहित हो। आत्मा का अहित करने वाले काम, क्रोध, मद, माया, लोभ आदि से बचने का अभ्यास करें। जिसने यह समझ लिया कि गुस्से में कोई सार नहीं है, गुस्सा करना बेकार है और जिसको गुस्से पर कन्ट्रोल करने की क्षमता प्राप्त हो गई, वह व्यक्ति गुस्सा नहीं करेगा। वास्तव में क्रोध करना असारपूर्ण है और क्षमा का भाव रखना सारपूर्ण है। लोभ निस्सार है और निर्लोभ में रहना सारभूत है। संतोष सारभूत है और कामना असारभूत है। बौद्ध साहित्य में सार-असार के बारे में बताया गया और जैन वाङ्मय में कहा गया कि सत्य लोक में सारभूत है, आत्मा लोक में सारभूत है। हम आत्मा की ओर ध्यान दें और अपनी आत्मा को सारपूर्ण बनाने का प्रयास करें।

१०

राग का कांटा न चुभे

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में एक सुन्दर श्लोक प्राप्त होता है—

यथागारं दुच्छन्नं वुट्ठि समतिविज्झति।
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति।।१/१३।।

जैसे ठीक से न छाए हुए घर में वृष्टि का जल घुस जाता है, वैसे ही ध्यान-भावना से रहित चित्त में राग घुस जाता है।

आदमी की मौलिक वृत्तियों में एक है राग की वृत्ति, काम की वृत्ति। जब किसी मोक्षगामी आत्मा की वृत्तियां समाप्ति को प्राप्त होती हैं तब जो सबसे अन्त में समाप्त होती है, वह है लोभ की वृत्ति या राग की वृत्ति। द्वेष पहले चला जाता है, राग बाद में जाता है। जैन वाङ्मय के उत्तराध्ययन सूत्र में वीतराग शब्द प्राप्त होता है। वीतराग यानी जिसका राग चला गया। केवल वीतद्वेष होने पर तो राग विद्यमान रहता है। वीतराग हो गया, फिर द्वेष को रहने के लिए कोई स्थान नहीं मिलता। राग कितना रहस्यपूर्ण है, सूक्ष्म है और वह किस प्रकार मन में आ जाता है, घुस जाता है। उसको हम सूक्ष्मता से पकड़ें और पहले अप्रशस्त राग को दूर करने का प्रयास करें। फिर धीरे-धीरे प्रशस्त राग तो अपने-आप ही कभी चला जाएगा।

गौतम गणधर के मन में भगवान् महावीर के प्रति प्रशस्त राग था। परन्तु वह उसी जन्म में चला गया। क्योंकि अप्रशस्त राग को विदा कर दिया गया तो प्रशस्त राग को तो जाना ही पड़ेगा। धम्मपद में एक सुन्दर उदाहरण दिया गया कि एक झौंपड़ी अच्छी तरह छाई हुई नहीं है, बीच-बीच में छिद्र हैं। इसलिए वर्षा का पानी अन्दर चला जाता है। झौंपड़ी में तो क्या, बड़े-बड़े मकानों में भी वर्षा का पानी चूने लग जाता है। ठीक इसी प्रकार जिसका चित्त अध्यात्म से भावित नहीं हुआ है, उस चित्त में राग प्रवेश करता रहता है। किसी चीज को देखा और राग हो गया। स्थूल भाषा में कहें तो बाह्य पदार्थों के निमित्त से भीतर का राग उभर जाता है। यह राग तब प्रवेश करता है जब वह छत मजबूत नहीं होती है यानी चित्त पूरी तरह भावित नहीं होता है। साधक की यह साधना होनी चाहिए कि वह छत को ठीक करे, मजबूत बनाए यानी चित्त को भावित करे। जैसे अच्छी तरह छाया हुआ मकान है, उसमें वर्षा का प्रवेश नहीं हो सकता। वैसे ही अध्यात्म की साधना का एक महत्त्वपूर्ण आयाम यह है कि व्यक्ति अपने चित्त को इतना भावित कर ले कि उसमें राग का प्रवेश ही न हो सके। संभव है एक साथ पूरी भावितता न भी आए, किन्तु उसका अभ्यास किया जाए तो वीतरागता की ओर आगे बढ़ा जा सकता है। उत्तराध्ययन की भाषा में वीतराग कह दें और गीता की भाषा में स्थितप्रज्ञ कह दें, वह साधना पुष्ट हो जाए, चित्त इतना भावित हो जाए, फिर कहीं से भी राग को उभरने का मौका नहीं मिलेगा।

हमारी दुनिया में कुछ महान् आत्माएं भी होती हैं, कुछ सामान्य और कुछ अधम स्तर की आत्माएं भी होती हैं। राग-द्वेष की वृत्ति जिसमें प्रबल होती है वह अधम वृत्ति का आदमी होता है। जिसमें राग-द्वेष कुछ मंद हो गया है, वह सामान्य स्तर का आदमी होता है और जिसका राग-द्वेष लगभग समाप्त या पूर्ण समाप्त हो गया है, वह महान् व्यक्ति बन जाता है। हम राग-द्वेष की वृत्ति को कमजोर बनाने का प्रयास करें तो हमारे में महानता का या महात्मता का विकास होता चला जाएगा। राग-द्वेष की वृत्ति कमजोर हो जाती है फिर दुराग्रह नहीं रहता। आदमी में दुराग्रह की वृत्ति भी राग-द्वेष के कारण ही होती है। एक युवक कीचड़ युक्त तलैया का गंदा-सा पानी पी रहा था। राहगीर ने कहा—भैया! आगे अच्छी तलैया है। वहां साफ पानी है। वह पी लो। यह गंदा पानी क्यों पीते हो? उसने कहा—मैं तो इसी तलैया का पानी पीऊंगा। क्योंकि यह मेरे बाप की तलाई है। इस बात को आचार्य भिक्षु के

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

साहित्य में बताया गया—'बाप तलाई जाण नै, खावै गार गिंवार।' बाप-तलैया की दुहाई देकर गंदा पानी भी आदमी पीने को तैयार हो जाए, यह दुराग्रह की बात होती है। तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में, दर्शन के क्षेत्र में भी दुराग्रह हो जाता है। फिर आदमी गलत बात को भी पकड़े हुए रखता है। क्योंकि वह हमारी परंपरा की बात है। सही बात को स्वीकार करने का प्रयास ही नहीं करता। जब अनाग्रह की वृत्ति आगे बढ़ेगी और यथार्थपरक दृष्टि से अध्ययन का प्रारंभ होगा तो सम्यक् तत्त्व का प्रकाश उसे मिल जाएगा। अगर ज्ञान को अनाग्रह भाव से, विनम्र भाव से स्वीकार किया जाए तो ज्ञान आदमी की चेतना को प्रकाशित कर देता है।

गुरु ज्ञानदाता होते हैं। वे ऐसा ज्ञान देते हैं, जिससे आदमी का जीवन अच्छा बन जाए, निर्मल बन जाए और वह निरवद्य पथ की ओर अग्रसर हो जाए। संस्कृत साहित्य में गुरु के लिए कहा गया—'अवद्यमुक्ते पथि यः प्रर्वतते' अर्थात् जो स्वयं निरवद्य पथ पर चलता है और दूसरों को भी निरवद्य पथ पर चलाने का प्रयास करता है, वह व्यक्ति गुरु होता है। जैन परंपरा में गुरु के लिए कहा गया—'सुसाहुणो गुरुणो' अर्थात् जो शुद्ध साधु होते हैं, वे गुरु होते हैं। उन्होंने राग-द्वेष को कम किया है। इसलिए गुरुता के स्थान को प्राप्त कर लिया। जिसका चित्त अध्यात्म से भावित है। उसमें राग भाव को प्रवेश करने का मौका नहीं मिलता। राग-द्वेष का प्रभाव होता है तब तुच्छ वृत्तियां पनपती हैं। कभी कर्त्तव्य से च्युति की वृत्ति भी पनप जाती है। एक राजा के मन में विचार आया कि मैं दूध से भरे हुए तालाब को देखूं और उस तालाब के दूध से मैं स्नान करूं। पूरा तालाब दूध से छलछलाता हुआ मेरी नजर के सामने रहे। राजा ने यह बात मंत्री को बताई। मंत्री ने राजधानी में आदेश जारी करा दिया कि अमुक दिनांक को सवेरे हर घर का एक व्यक्ति आए और एक लोटा दूध इस तालाब में डाले। वहां हजारों-हजारों घर थे। एक व्यक्ति के मन में विचार आया कि और सब तो दूध डालेंगे, मैं एक लोटा पानी डाल दूंगा तो कौनसा फर्क पड़ने वाला है। वह सुबह जल्दी उठा और एक लोटा पानी तालाब में डालकर आ गया। एक व्यक्ति के मन में आया हुआ विचार सबके मन का विचार बन गया और तालाब दूध की जगह पानी से भर गया। लोगों का कर्त्तव्य था कि वे राजाज्ञा का सम्मान करते, किन्तु ऐसा नहीं किया।

जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को नहीं समझता है, उसका कभी कोई ऐसा अनिष्ट हो सकता है जिसकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की होगी।

आदमी को राग भाव छोड़ने के लिए संयम का अभ्यास करना होगा। उत्तराध्ययनकार ने कहा कि तुम्हें राग सता रहा है तो राग को जीतने का अभ्यास करो।

अदंसणं चेव अपत्थणं च, अचिंतणं चेव अकित्तणं च।
इत्थीजणस्सारियझाणजोग्गं, हियं सया बंभवए रयाणं।।३२/१५।।

जो सदा ब्रह्मचर्य में रहत हैं, उनके लिए स्त्रियों को न देखना, न चाहना, न चिन्तन करना और न वर्णन करना हितकर है तथा आर्य ध्यान—धर्म ध्यान के लिए उपयुक्त है।

एक साधु के मन में किसी स्त्री के प्रति राग भाव आ रहा हो तो उत्तराध्ययनकार ने कहा कि स्त्रियों को देखो ही मत, मन में इच्छा मत करो, चिंतन मत करो, कीर्तन मत करो, यह उपाय है। क्योंकि हमारी साधना में जहां उपादान का महत्त्व है तो निमित्त भी अपना काम करता है। निमित्त खराब मिला तो मन विकृत हो जाएगा। निमित्त ठीक मिल गया तो मन में पवित्र विचार आ जाएंगे। इसलिए उपादान तो मुख्य चीज है ही, परन्तु उपादान के साथ निमित्त का भी अपना मूल्य है। हम उपादान और निमित्त, दोनों पर ध्यान दें। जितना निमित्त से बचना आवश्यक है, उतना निमित्तों से बचने का प्रयास करें। जहां उपादान मजबूत हो गया यानी अध्यात्म से सुभावित हो गया, फिर तो निमित्त कोई भी आ जाए, कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। फिर चाहे कितना ही मन को रागात्मक बनाने वाला निमित्त मिल जाए, कोई भी निमित्त उसे डिगा नहीं सकता। पैरों में मजबूत जूते पहन लिए हैं तो कोई भी कांटा चुभ नहीं सकता। जूता कमजोर हो तो कांटा जूते के भीतर आकर भी पैरों में चुभ सकता है, किन्तु जूता यदि लोहे का मजबूत है तो कितना ही तीखा कांटा हो, वह कांटा टूट जाएगा, पर पैरों में चुभ नहीं सकेगा। इसी प्रकार जब व्यक्ति अपने

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

चित्त को साधना से भावित कर लेता है, समता से भावित कर लेता है, फिर राग भाव का कांटा कभी चुभ नहीं सकता।

उत्तराध्ययन सूत्र और धम्मपद ग्रन्थ में सुन्दर पथदर्शन दिया गया है। एक पाठक केवल पढ़े ही नहीं और श्रोता केवल सुने ही नहीं। सुनना भी अच्छा है, पढ़ना भी अच्छा है, किन्तु और ज्यादा अच्छा तब होता है जब पढ़ने और सुनने के साथ-साथ कोई तत्त्व, कोई तथ्य ग्रहण भी हो जाए। वह ग्रहण किया हुआ तत्त्व जीवन को पवित्र बनाने वाला और जीवन को ऐसी दिशा देने वाला बन जाता है कि आदमी का जीवन अच्छा बन जाता है। हमें मनुष्य का जीवन मिला है। यह जीवन किन्हीं-किन्हीं जीवों को मिलता है। अनंत-अनंत प्राणियों को तो यह जीवन प्राप्त ही नहीं होता है। कुछ जीवों को यह मनुष्य जीवन प्राप्त होता है। आदमी के पास बुद्धि होती है, चिन्तन भी होता है। आदमी अपनी बुद्धि और अपने चिंतन को अच्छे कार्यों में लगाने का प्रयास करे। अपने समय का अच्छे कार्यों में उपयोग करने का प्रयास करे। अगर अच्छे कार्यों में समय लगता है, अच्छे चिंतन में, अच्छे विचार में समय लगता है तो समय सार्थक हो जाता है।

११

आदमी दुःखी न बने

पाप करने वाला व्यक्ति इस जीवन में भी शोक को प्राप्त होता है और परलोक में भी वह शोक को प्राप्त होता है। पाप करते समय चाहे आदमी खुशी मना ले, परन्तु जब उसका परिणाम आता है तब वह कष्टकर या प्रतिकूल हो जाता है। बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

इध सोचति पेच्च सोचति पापकारी उभयत्थ सोचति।
सो सोचति सो विहञ्ञति दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो।।१/१५।।

इस लोक में शोक करता है और परलोक में जाकर भी, पापी दोनों जगह शोक करता है। वह अपने मैले कर्मों को देखकर शोक करता है, पीड़ित होता है।

आदमी पाप भी करता है। पाप करने वाले कुछ लोग ऐसा भी सोच सकते हैं कि आगे कुछ नहीं है। यहीं जीवन है, यहीं अस्तित्व है, जो करना हो सो यहां कर लें। वर्तमान को ही सब कुछ मान लेना अपराध का एक मुख्य अथवा गौण हेतु बन सकता है। जिसको आगे की चिन्ता है वह सोचेगा कि मैं पापों से बचूं। मेरी अगली गति क्या होगी? जिसको आगे की परवाह नहीं है, इसी जीवन को सब कुछ मान लेता है और आत्मा के भावी अस्तित्व को अस्वीकार करता है, वह व्यक्ति पापाचार में प्रवृत्त हो सकता है। धम्मपदकार ने कहा कि जो ऐसा पाप करने वाला व्यक्ति है, वह इस जीवन में भी शोक करता है, दुःखित होता है और अगले जन्म में भी उसे दुःखी होना पड़ता है। उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया है कि यहां भी कर्म का परिणाम

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jainbharati.org

समय में मन में आता है कि मैंने नरक के बारे में सुना है, नरक गति होती है, मैंने जीवन में पाप ज्यादा किया है, अब मेरा क्या होगा। पहले तो मैं यह सोचता रहा—

हत्थागया इमे कामा, कालिया जे अणागया।
को जाणइ परे लोए, अत्थि वा नत्थि वा पुणो?।।५/६।।

ये वर्तमान के कामभोग मेरे हाथ में आए हुए हैं। भविष्य में होने वाले कामभोग संदिग्ध हैं। कौन जानता है परलोक है अथवा नहीं।

नास्तिक विचारधारा भौतिकवादी दृष्टिकोण का आधार बनती है और आस्तिक विचारधारा अध्यात्मवादी दृष्टिकोण का आधार बनती है। जैन वाङ्मय में दृष्टिकोण को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। अगर दृष्टिकोण सम्यक् है तो उसका आधार ठीक है और दृष्टिकोण सम्यक् नहीं है तो मानना चाहिए आधार ठीक नहीं है। जैन साधना पद्धति में अथवा जैन तत्त्वविद्या में सम्यक् चारित्र का भी आधार सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान को माना गया है। अगर चारित्र सम्यक् पालना है तो उसका दृष्टिकोण भी सम्यक् हो, यह आवश्यक है। सम्यक् दृष्टिकोण के बिना मात्र ऊपरी तौर पर आचार का पालन करने से थोड़ा लाभ भले मिल जाए, किन्तु ज्यादा लाभ नहीं मिलेगा। जो व्यक्ति परलोक में विश्वास करता है, आत्मा के त्रैकालिक अस्तित्व में विश्वास करता है और अपनी आत्मा को पापों से बचाने का प्रयास करता है, उसका मतलब है उस आत्मा में कुछ निर्मलता है, उस आत्मा में अनंतानुबंधी कषाय का अभाव या कुछ हल्कापन है, जिससे उसके मन में पापभीरूता का भाव जागा है।

बौद्ध साहित्य के इस कथन पर ध्यान देना चाहिए कि जो आदमी पाप करने वाला है, वह इहलोक-परलोक यानी दानों लोकों में दुःख पाता है। वह अपने किए हुए कर्मों को देख-देखकर संक्लिष्ट होता है कि मैंने यह क्या किया। इसके विपरीत जो आदमी धर्म का आचरण करता है उसके बारे में धम्मपद में कहा गया है—

इध मोदति पेच्च मोदति कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति।
सो मोदति सो पमोदति दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो।।१/१६।।

इस लोक में मोद करता है और परलोक में जाकर भी, पुण्यात्मा दोनों जगह मोद करता है। वह अपने कर्मों की विशुद्धि को देखकर मोद करता है, प्रमोद करता है।

जो व्यक्ति पुण्य करनेवाला या धर्म करनेवाला होता है वह यहां भी मोद मनाता है, मुदित होता है, प्रसन्न होता है, सुख पाता है और मरने के बाद अगले जन्म में भी उसे आनंद मिलता है, खुशियां मिलती हैं, सुख मिलता है और वह अपने अच्छे कर्मों को देखकर आत्मसंतुष्ट होता है।

मनुष्य के सामने दो रास्ते हैं। वह चाहे तो पाप का रास्ता ले सकता है, चाहे तो धर्म का रास्ता भी ले सकता है। राजा जंगल में भटक गया। अचानक उसे एक संन्यासी दिखाई दिया। उसने संन्यासी से पूछा—महात्मन्! मेरे महल का रास्ता कौनसा है? संन्यासी ने देखा कि राजा के पास एक मरा हुआ खरगोश है। अवश्य ही यह हिंसा करके आया है। इसे समझाना चाहिए। संन्यासी ने कहा—राजन्! मैं दो रास्ते जानता हूं—एक ऊपर का रास्ता और दूसरा नीचे का रास्ता अर्थात् एक स्वर्ग या मोक्ष का रास्ता व दूसरा नरक का रास्ता। अहिंसा ऊर्ध्वगति का रास्ता है और हिंसा अधोगति का रास्ता है। तुम्हें कौनसा रास्ता चाहिए? राजा प्रबुद्धचेत्ता व्यक्ति था, समझ गया कि बाबाजी मुझे संबोध दे रहे हैं कि मैं हिंसा को छोडूं, शिकार को छोडूं और अहिंसा का जीवन जीऊं। राजा ने कहा—महात्मन्! मैं आपके सामने संकल्प स्वीकार करता हूं कि अब जिंदगी में कभी शिकार नहीं करूंगा। संस्कृत साहित्य में सात व्यसन बताए गए हैं—

द्युतं च मांसं च सुरा च वेश्या, पापर्द्धिचौर्यं परदारसेवा।
एतानि सप्तव्यसनानि लोके, घोरातिघोरं नरकं नयन्ति।।

सातों व्यसन पाप के कार्य हैं। जुआ खेलना, मांस भक्षण, मदिरापान, वेश्यागमन, शिकार, चोरी और परस्त्रीगमन—ये सात व्यसन माने गए हैं। इन सात व्यसनों से जो आदमी पूर्णतया मुक्त है उसका जीवन काफी शुद्ध है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

राजा ने एक सीमा तक अहिंसा व्रत स्वीकार कर लिया। संत तो रास्ता बता सकते हैं। चुनाव करना तो आदमी का काम है कि वह कौनसे रास्ते का चुनाव करे। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पांच व्रत स्वीकार करने योग्य हैं। इन पांचों से युक्त जीवन है तो यहां भी मोद और आगे भी शांति मिलने की संभावना रहती है। श्रावक के लिए बारहव्रतों का विधान मिलता है। हम आगम के आधार पर जान सकते हैं कि आनंद श्रावक ने किस रूप में व्रतों को स्वीकार किया था। संयम की चेतना को पुष्ट करने के लिए बारहव्रतों पर ध्यान देना चाहिए। बारहव्रत काफी व्यवस्थित ढंग से निरूपित हैं, काफी सुंदर वर्गीकरण है, जिसमें उपासना-साधना भी आ गई और आचरणात्मक धर्म भी आ गया। एक से आठ व्रतों में संयम या आचरणात्मक धर्म है और फिर उपासना-साधना की बात है। अवस्था प्राप्त व्यक्तियों को तो विशेष ध्यान देना चाहिए कि हम बारहव्रती श्रावक-श्राविका बन जाएं। बारहव्रत का जीवन में आ जाना एक धर्म की निधि का पास में आ जाना होता है। जीवन बारहव्रतमय है तो मानना चाहिए धार्मिकता जीवन में है और धार्मिकता जीवन में है तो यहां भी शांति और मरने के बाद भी अच्छी गति, अच्छी शान्ति और अच्छा स्थान मिलने की संभावना रहती है। मनुष्य वर्तमान के साथ-साथ अपने भविष्य पर भी विचार करे।

हम ऐसी साधना करें, जिससे हम कभी दुःखी न बनें। हमारी आत्मा शांत रहे और हम प्रयास करें कि वीतरागता के निकट पहुंच जाएं।

१२

इह-परलोक को सुधारें

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में पाप करने वाले और पुण्य करने वाले व्यक्ति के बारे में बताते हुए कहा गया है—

इध तप्पति पेच्च तप्पति पापकारी उभयत्थ तप्पति।
पापं मे कतन्ति तप्पति भिय्यो तप्पति दुग्गतिङ्गतो।।१/१७।।

इस लोक में सन्ताप करता है और परलोक में जाकर भी, पापी दोनों जगह सन्ताप करता है। 'मैंने पाप किया है' सोच सन्ताप करता है। दुर्गति को प्राप्त हो और भी अधिक सन्ताप करता है।

इध नन्दति पेच्च नन्दति कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।
पुञ्ञं मे कतन्ति नन्दति भिय्यो नन्दति सुगतिं गतो।।१/१८।।

इस लोक में आनन्द करता है, परलोक में जाकर भी, पुण्यात्मा दोनों जगह आनन्द करता है। 'मैंने पुण्य किया है' सोच आनन्द करता है। सुगति को प्राप्त हो और भी अधिक आनन्द करता है।

पापकारी व्यक्ति के यहां भी पाप उदय में आ जाते हैं और मरने के बाद भी जब पापकर्मों का विपाक होता है तो वह संतप्त होता है, पश्चात्ताप करता है। यहां भी पश्चात्ताप और मरने के बाद भी उसे पश्चात्ताप करना पड़ता है। जो व्यक्ति धर्म की साधना करता है वह यहां भी आनंद मनाता है, आत्मशान्ति को प्राप्त करता है और मरने के बाद भी उसे आनंद मिलता है।

हमारे सामने वर्तमान जीवन भी है और भविष्य भी हमारे चिंतन का विषय बन सकता है। भविष्य को अच्छा बनाने के लिए आदमी को वर्तमान पर

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

ध्यान देना चाहिए। वर्तमान में कुछ ऐसा करना चाहिए जिससे भविष्य अच्छा रह सके। तब तो भविष्य की सुरक्षा हो सकेगी। यदि भविष्य पर ध्यान ही नहीं दिया, केवल वर्तमान को ही देखते रह गए तो भविष्य में कठिनाई पैदा हो सकती है।

जहां धम्मपद में परलोक और इहलोक की बात कही गई है, वहीं उत्तराध्ययन में भी धर्म-अधर्म की बात बताते हुए कहा गया कि धार्मिक की रात्रियां सफल होती हैं–

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ।।१४/२५।।

जो जो रात बीत रही है, वह लौटकर नहीं आती। धर्म करने वाले की रात्रियां सफल होती हैं।

धर्म और अधर्म दोनों हमारे सामने हैं। धर्म करने वाले की रात्रियां सफल होती हैं और अधर्म करने वाले की रात्रियां निष्फल होती हैं। जीवन में कभी-कभी ऐसी प्रेरणा जागती है कि आदमी का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है और वह सही रास्ते का चुनाव कर लेता है। जब तक हमारी चेतना पर मूर्च्छा का आवरण होता है, तब तक हम सही निर्णय नहीं कर पाते हैं और हमें सम्यक् दृष्टिकोण भी प्राप्त नहीं हो पाता है। आदमी को प्रयास यह करना चाहिए कि मैं ज्ञान का अर्जन करूं, सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करूं। क्योंकि ज्ञान के समान कोई पवित्र वस्तु नहीं है। ज्ञान से पथ आलोकित होता है। क्या करना और क्या न करना, यह स्पष्ट हो जाता है। अज्ञान को बड़ा अभिशाप माना गया है। क्योंकि उसके कारण आदमी हित-अहित का भी विवेक नहीं कर सकता। सम्यक् ज्ञान जिसे प्राप्त हो जाता है, वह व्यक्ति सम्यक् पथ पर या सुख शान्ति प्रदान करने वाले पथ पर अग्रसर हो सकता है और अपनी आत्मा का भी उद्धार कर सकता है। हमारे पास शरीर भी है और आत्मा नाम का तत्त्व भी माना गया है। आत्मा आगे जाने वाली है और शरीर यहीं रह जाने वाला है। आदमी शरीर पर ध्यान देता है, किन्तु साथ में आत्मा पर भी ध्यान दे और आत्म-उद्धार का भी चिंतन करे। मोह के आवरण को क्षीण करने का अभ्यास करे।

किसी गांव में एक महात्मा पधारे। महात्माजी का प्रवचन सुनने काफी लोग आते थे। एक युवक भी आया करता था। एक दिन वह बाबाजी के पास धर्म के बारे में चर्चा कर रहा था। बाबाजी ने संसार को असार और स्वार्थी बताते हुए मोह, माया, लोभ आदि छोड़ने की बातें कहीं। लड़का बोला–महात्माजी! आप तो कहते हो संसार असार है, दुनिया स्वार्थी है, किन्तु मेरे माता-पिता का मेरे प्रति बहुत मोह है। मैं अगर कुछ समय उनके पास न जाऊं तो उनका जीना मुश्किल हो जाता है। वे मेरे बिना तो जिंदा भी नहीं रह सकते। बाबाजी ने कहा–मोह तो होता है संसार में, पर तुम्हारे मां-बाप जिन्दा नहीं रह सकते, ये सब ऊपर की बातें हैं। युवक अपनी बात पर अड़ा रहा। तब संन्यासी ने कहा–तुम परीक्षा करके देख लो। बाबाजी कुछ योगसाधना की विधियां जानते थे। लड़के को योग साधना की एक विधि बता दी। दो-तीन दिनों बाद लड़का बोला–मां! आज तो पेट में भयंकर दर्द हो रहा है। मां ने कहा–बेटा! तुम कमरे में सो जाओ। मैं डॉक्टर को बुलाती हूं। डॉक्टर कुछ ही मिनटों में पहुंच गया। लड़के को देखा और फिर निःश्वास छोड़ते हुए कहा–माताजी! इसमें तो कुछ नहीं है। यह तो खत्म हो चुका है। मां रोने लग गई। पड़ौसी इकट्ठे हो गए। लड़के के पिता को भी बुला लिया गया। उसी समय बाबाजी भी भिक्षा के लिए घूमते हुए उधर आ गए। बाबाजी अंदर आए। वह बूढ़ी मां रोती हुई बोली–महाराज! आज अकस्मात आपके चेले के पेट में थोड़ा-सा दर्द हुआ और चल बसा। बाबाजी सान्त्वना देने वहीं बैठ गए। लड़के का पिता बोला–महाराज! आप तो योगी हैं। आपके पास कोई जड़ी बूटी हो तो मेरे बेटे को जिंदा कर दो। बाबाजी ने अपनी झोली में से एक पुड़िया निकाली और कहा–एक गिलास पानी लाओ। बाबाजी ने वह पुड़िया उस गिलास के पानी में मिला दी और बोले–इसको तो मैं बिठा सकता हूं, पर इसकी जगह परिवार के किसी एक व्यक्ति को जाना पड़ेगा, अन्य कोई उपाय नहीं है। संन्यासी ने लड़के के पिता से कहा–सेठ साहब! उम्र कितनी आ गई?

पिता–महाराज! सत्तर वर्ष आ गए हैं।

बाबाजी–आपको काफी उम्र आ गई है। थोड़ी हिम्मत करो और यह पुड़िया मिला हुआ पानी पी लो। आपका बेटा तत्काल बैठ जाएगा।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

पिता—महाराज आपकी बात तो ठीक है। बेटे के लिए पिता कुर्बान हो तो क्या बड़ी बात है, परन्तु दुकान की सारी बात मैं जानता हूं। बेटा नहीं जानता है। मैं अगर चल बसा तो पीछे दुकान कौन संभालेगा। इसलिए मैं तो नहीं पी सकता।

संत ने मां से कहा—माजी! आप थोड़ी हिम्मत करो और यह पानी पी लो। बेटा जीवित हो जाएगा।

मां—महाराज! दुकान की बात तो ये जानते हैं, किन्तु घर की बात मैं जानती हूं। बहू तो अभी नई है। मैं चली गई तो फिर घर को कौन संभालेगा?

फिर संन्यासी ने उसकी पत्नी से कहा—बेटी! अपने पति के लिए तुम बलिदान करो।

वह पढ़ी लिखी महिला थी, प्रबुद्ध थी, वह बोली—महाराज! अगर मैं चली गई तो पीछे इस मुन्ने को कौन संभालेगा?

संन्यासी बड़ी आत्मीयता के साथ बोला—कोई बात नहीं, लड़का जीवित हो जाएगा तो हम उसकी दूसरी शादी करा देंगे। मुन्ने को वह आने वाली संभाल लेगी। वह बोली—महाराज! दूसरी शादी तो मैं ही करवा लूंगी। आप इनको भले जाने दो।

जब पानी पीने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ, तब सेठ बोला—महाराज! हम गृहस्थ हैं। हमें तो आगे-पीछे सब देखना पड़ता है। आपके आगे-पीछे कोई नहीं है। कृपा करके आप ही हिम्मत कर लें।

संन्यासी ने कहा—वाह! मुझे विदा करना चाहते हो। खैर....लड़का मरा तो था नहीं, वह तो प्रयोग कर रहा था। उसने श्वास रोक रखा था। संन्यासी ने पानी के छींटे दिए और कहा—बेटा! बैठ जा। लड़का तत्काल बैठ गया। तब संन्यासी ने कहा—युवक! तुमने कहा था कि मेरे बिना मां-बाप जिन्दा नहीं रह सकते, पर कोई तुम्हारे लिए मरने को तैयार नहीं हुआ। लड़का बोला—महाराज! अब मुझे ज्ञान हो गया कि मेरी जो धारणा थी वह ठीक नहीं थी। मैंने संसार की स्थिति को जान लिया है। अब मैं आपके द्वारा बताए गए धर्म को स्वीकार करूंगा और पापों से बचूंगा। ताकि यहां भी शान्ति से रह सकूं और परलोक में भी मुझे शान्ति मिल सके। धम्मपद में ठीक कहा है कि पाप करने वाला यहां भी संताप को प्राप्त होता है और आगे भी संताप को प्राप्त होता है। धर्म करने वाला यहां भी आनन्द में रहता है और आगे भी उसे आनन्द प्राप्त होता है। धम्मपद और उत्तराध्ययन में जो धर्म-अधर्म या पुण्य-पाप की बात कही गई है, उसे आत्मसात करने वाला व्यक्ति अपने वर्तमान और भविष्य को सुन्दर और सफल बना सकता है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

१३

श्रामण्य का अधिकारी कौन?

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

बहुम्पि चे सहितं भासमानो न तक्करो होति नरो पमत्तो।
गोपो व गावो गणपं परेसं न भागवा सामञ्ञस्स होति।।१/१९।।

चाहे कोई भले ही बहुत से ग्रन्थों का पाठ करने वाला हो, किन्तु प्रमाद में पड़ यदि उसके अनुसार आचरण न करे, तो वह दूसरों की गौवें गिनने वाले ग्वाले की भांति, श्रामण्य का अधिकारी नहीं होता।

मेरा तो विचार है कि आचरण करना तो अच्छा है ही, कोई आचरण न भी करे तो पढ़ना भी अच्छा है। पढ़ना कोई खराब नहीं है। धम्मपदकार ने एक आगे की बात कह दी कि जो पढ़ता तो बहुत है, परन्तु प्रमत्त होने के कारण धर्म ग्रन्थों में बताई गई बातों का आचरण करने वाला नहीं बनता है। पढ़ने का मूल्य अल्प है, किन्तु आचरण का तो बहुत मूल्य होता है। जो व्यक्ति पढ़ता है, स्वाध्याय कर लेता है, परन्तु उसका आचरण करने वाला नहीं होता है, वह व्यक्ति कैसा होता है? एक उदाहरण दिया गया कि वह ऐसा ग्वाला है जो दूसरों की गायों को गिनता है। चूंकि उसके पास गाएं नहीं हैं, दूसरों की गायों की गिनती करने से उसे क्या मिलेगा? स्वयं के पास गौवें हों तब तो वह गोमान बनेगा। दूसरों की गायों की मात्र गिनती करने वाला किसी का स्वामी नहीं होता है, इसी प्रकार जो केवल पढ़ लेता है, परन्तु उसका आचरण नहीं करता है, वह व्यक्ति श्रामण्य का भागी अथवा श्रामण्य का अधिकारी नहीं होता। जैन आगम में कहा गया—समणोऽहं यानी साधु को 'मैं श्रमण हूं' इस बात की स्मृति व्यक्त रूप में हो अथवा अव्यक्त रूप में हो, निरन्तर बनी रहे। यह भाव भीतर बना रहे कि मैं श्रमण हूं। मैं कोई सामान्य आदमी या गृहस्थ नहीं हूं। मैं दुनिया का कोई बड़ा आदमी हूं। साधु दुनिया का बड़ा आदमी होता है। भले वह किसी देश का राष्ट्रपति न हो, भले वह किसी देश का प्रधानमंत्री न हो अथवा किसी प्रान्त का राज्यपाल या मुख्यमंत्री न हो, पर साधुत्व है और साधुत्व के अनुसार आचरण करता है तो किसी दृष्टि से वह राष्ट्रपति से भी बड़ा है, प्रधानमंत्री से भी बड़ा है और आगे चलूं तो चक्रवर्ती से भी बड़ा है। हम साधना के पथ पर चलने का संकल्प स्वीकार करने वाले श्रमण हैं। हमने अभिनिष्क्रमण किया है। घर से अभिनिष्क्रान्त हुए हैं। दसवेआलियं सूत्र में कहा गया—

जाए सद्धाए निक्खंतो, परियायट्ठाणमुत्तमं।
तमेव अणुपालेज्जा, गुणे आयरियसम्मए।।८/६०।।

जिस श्रद्धा से उत्तम प्रव्रज्या स्थान के लिए घर से निकला, उस श्रद्धा को पूर्ववत् बनाए रखे और आचार्य सम्मत गुणों का अनुपालन करे।

मूल बात है, जिस निष्ठा के साथ हमने अभिनिष्क्रमण किया है, संयम-पर्याय को स्वीकार किया है, वह निष्ठा बनी रहे। हम प्रयास करें वह निष्ठा और ज्यादा पुष्ट हो जाए। कोई भी क्षेत्र हो, कहीं भी कार्य करना हो, निष्ठा उसकी आत्मा होती है। जिस विषय में निष्ठा है, रुचि है, आकर्षण है, उस विषय में आदमी अग्रसर होता है। कोई न कहे तो भी आदमी उधर आगे बढ़ता है। प्रेरणा न भी मिले तो भी वह काम कर लेता है। जिसमें निष्ठा नहीं है वह काम कभी बिना मन कर भी ले, पर भीतर से तादात्म्य नहीं जुड़ता है। यह श्रद्धा का भाव और निष्ठा का भाव श्रामण्य के प्रति पुष्ट बने।

धम्मपद में आगे कहा गया है—

अप्पम्पि चे सहितं भासमानो धम्मस्स होति अनुधम्मचारी।
रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा स भागवा सामञ्ञस्स होति।।१/२०।।

चाहे कोई भले ही थोड़े ग्रन्थों का पाठ करने वाला हो, किन्तु धर्मानुकूल

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

आचरण करता हो। राग, द्वेष और मोह को छोड़ सचेत और मुक्तचित्त वाला हो तथा इस लोक या परलोक में कहीं भी आसक्ति न रखता हो तो वह श्रामण्य का अधिकारी होता है।

जो व्यक्ति पढ़ता कम है, परन्तु जितनी जानकारी प्राप्त होती है उसके अनुरूप धर्म का आचरण करता है। जो राग-द्वेष और मोह को छोड़कर अनासक्त बन जाता है, वह व्यक्ति श्रामण्य का अधिकारी होता है। साधना के क्षेत्र में पढ़ना भी महत्त्वपूर्ण है, किन्तु पढ़ने के साथ-साथ अच्छा स्वाध्याय भी हो। हम स्वाध्याय शब्द की व्याख्या करें। अनेक कोणों से शब्द की शल्यक्रिया अथवा मीमांसा की जा सकती है। स्वाध्याय का शाब्दिक अर्थ है—स्वस्य अध्यायः इति स्वाध्यायः। अपना अध्ययन करना स्वाध्याय है। अपना अध्ययन कैसे और किस प्रकार हो सकता है? जैसे हमने किसी धर्मग्रंथ को पढ़ा। पढ़ने के बाद यह चिंतन किया कि यह बात मेरे भीतर कितने अंशों में है अथवा नहीं है। इस प्रकार अपना अध्ययन करना स्वाध्याय है। उदाहरण के लिए, आचार्य भिक्षु से किसी ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है? स्वामीजी ने कहा—मुझे भीखण कहते हैं। अच्छा! भीखणजी तुम हो? बहुत खराब हुआ। सुबह-सुबह तुम्हारा मुंह देख लिया। इसलिए नरक में जाना पड़ेगा। किसी को यह कहना कि तुम्हारा मुंह देख लिया, अतः नरक में जाना पड़ेगा, कितनी कटु बात है। परन्तु स्वामीजी आवेश में नहीं आए। उन्होंने कहा—तुम कहते हो कि मेरा मुंह देखने से तुमको नरक में जाना पड़ेगा तो यह बताओ तुम्हारा मुंह देखने से क्या मिलता है? वह गर्व के साथ बोला—मेरा मुंह देखने से तो स्वर्ग मिलता है। स्वामीजी ने उसको बोध देते हुए कहा—मैं तो यह नहीं मानता हूं कि किसी का मुंह देखने से नरक या स्वर्ग मिलता है, किन्तु तुम्हारी धारणा के अनुसार मैंने तो आज तुम्हारा मुंह देखा है। इसलिए मुझे तो स्वर्ग मिलना निश्चित हो गया। अब तुम जानो तुम्हें क्या मिलेगा। इस घटना को पढ़कर हम यह चिंतन करें कि मुझे कोई इतना कठोर बोल दे तो मुझे गुस्सा आएगा या नहीं, मेरी क्या स्थिति है? अगर गुस्सा आएगा या आने की संभावना है तो मैं उपशम कषाय की साधना करूं और इतना सहिष्णु बनूं कि कोई कुछ भी कह दे, मैं आवेश में नहीं आऊं, शांति में रहूं। मौके पर जवाब दे देना चाहिए। सब जगह मूक बनना आवश्यक नहीं। खण्डन करना हो तो खण्डन भी कर देना चाहिए और मण्डन करना हो तो मण्डन भी कर देना चाहिए, पर आवेश से बचकर रहना चाहिए। हमने हजारों ग्रंथ पढ़ लिए, परन्तु ग्रहण कुछ भी नहीं किया तो स्वाध्याय का लाभ तो मिल सकता है, जानकारियां भी कुछ बढ़ सकती हैं, पर साधना की दृष्टि से कोई लाभ नहीं मिल सकता। इसलिए जितना भी पढ़ें, उसमें से कुछ अपने जीवन में ग्रहण करने का प्रयास करें। पढ़ने के साथ-साथ हमें इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि हम जो सुनते हैं, वे बातें हमारे जीवन में कितनी आती हैं। हालांकि मैं यह तो नहीं कहता कि सारी बातें जीवन में आ जाएगी। हम लोग व्याख्यान देते हैं। नई-नई बातें बता देते हैं। वीतरागता तक की बात बता देते हैं। आप हमारी सारी बातें मान सकें, यह संभव नहीं लगता। यदि सारी बातें मान लेंगे तो आपके गार्हस्थ्य में भी समस्या आ जाएगी, किन्तु शतांश या सहस्रांश कुछ तो जीवन में आए ताकि आपका सुनना और हमारा बोलना सार्थक सिद्ध हो सके।

धम्मपदकार ने ठीक कहा कि तुम चाहे थोड़ा पढ़ो, थोड़ा सुनो, साथ में स्वाध्याय कर लो, अपना अध्ययन कर लो, तुलना कर लो और अपने आपको साधना में आगे बढ़ाने का प्रयास करो। धम्मपद में एक श्लोक में एक ही चरण में तीन शब्द कहे हैं—राग, द्वेष और मोह।

उत्तराध्ययन में भी एक ही श्लोक में और एक ही चरण में तीनों शब्द आए हैं। वहां कहा गया है—

रागं च दोसं च तहेव मोहं, उद्धत्तुकामेण समूलजालं।
जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा, ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्विं।।३२/९।।

राग, द्वेष और मोह का मूल सहित उन्मूलन चाहने वाले मनुष्य को जिन-जिन उपायों का आलंबन लेना चाहिए, उन्हें मैं क्रमशः कहूंगा।

इस प्रकार दोनों ग्रंथों में राग, द्वेष और मोह को छोड़कर आत्मस्थ बनने की बात कही गई है। जो व्यक्ति इस दिशा में अग्रसर होता है, वह व्यक्ति श्रामण्य का अधिकारी होता है।

© Jain Vishva Bharati. For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

१४

अप्रमत्त जीवन जीएं

जैन वाङ्मय में कहा गया है—'सव्वतो पमत्तस्य भयं, सव्वतो अपमत्तस्स णत्थि भयं।' जो प्रमत्त होता है, उसे भय सताता है और जो अप्रमत्त होता है, उसे भय नहीं सताता। जीवन विकास की दृष्टि से विचार किया जाए तो आध्यात्मिक साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण शब्द है अप्रमाद। जहां प्रमाद है वहां विकास के दरवाजे बन्द हो जाते हैं। आदमी किसी भी क्षेत्र में कार्य करे, उस क्षेत्र में निष्ठा का होना, समर्पण का होना बहुत आवश्यक होता है और वही उस क्षेत्र का अप्रमाद होता है। आचार्य हेमचन्द्र ने प्रमाद शब्द का अर्थ किया है—प्रमादोऽनवधानता अर्थात् अनवधानता प्रमाद है और सावधानता अप्रमाद है। विद्या संस्थानों में जब अध्यापक कहते हैं—सावधान, तो विद्यार्थी तत्काल जागरुक हो जाते हैं। यह सावधानता शब्द कैसे बना? सामान्यतया आदमी शब्दों की शल्यक्रिया कम करता है, किन्तु शब्द कैसे बना, यह ज्ञान भी होना चाहिए। स+अवधान अर्थात् जो अवधानयुक्त है वह सावधान है। बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता।।२/१।।

प्रमाद न करना अमृत पद का साधक है और प्रमाद करना मृत्युपद का। अप्रमादी नहीं मरते, किन्तु प्रमादी तो मरे तुल्य ही हैं।

अप्रमाद अमरत्व का स्थान है और प्रमाद विनाश का स्थान है। जो अप्रमत्त है, वह मरता नहीं और जो प्रमत्त है वह न मरने पर भी मरे हुए के समान होता है। इसलिए साधना का कोई सारभूत तत्त्व है, तो वह है अप्रमाद।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया—

एवं भवसंसारे, संसरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं।
जीवो पमायबहुलो, समयं गोयम! मा पमायए।।१०/१५।।

इस प्रकार प्रमाद-बहुल जीव शुभ-अशुभ कर्मों द्वारा जन्म-मृत्युमय संसार में परिभ्रमण करता है। इसलिए हे गौतम! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

हम साधना के संदर्भ में विचार करें कि साधक की साधना के प्रति निष्ठा है या नहीं। किसी साधु ने साधु का वेश धारण कर लिया या किसी श्रावक ने सामायिक में विशेष वेशभूषा को धारण कर लिया, यह एक ऊपरी चीज है। ऊपरी चीज का भी कुछ मूल्य तो होता है, परन्तु अन्तरंग चीज का मूल्य ज्यादा होता है। जिस साधना पद्धति का वेश धारण किया है, उस साधना के प्रति निष्ठा और समर्पण का भाव है तो उसमें प्राणवत्ता आ जाती है। यदि साधु के लिए अप्रमाद की आवश्यकता है तो गृहस्थ को भी अप्रमत्त रहने का प्रयास करना चाहिए। एक गृहस्थ का फर्ज है कि वह काम और अर्थ में ज्यादा मूर्च्छित न हो। अर्थ और काम के साथ धर्म होना चाहिए। अगर धर्म विहीन अर्थ है तो भी उच्छृंखलता है और धर्म विहीन काम है तो भी उच्छृंखलता है। इन दोनों पर अंकुश रखने वाले धर्म का गृहस्थ जीवन में बहुत महत्त्व है। गृहस्थ के लिए मनीषियों ने यह विवेक दिया कि अर्थ, काम और धर्म—इन तीनों में बराबर बैलेन्स रहे। मनुष्य यह विचार करे कि मैं पदार्थों में ध्यान देता हूं, शरीर पर ध्यान देता हूं तो आत्मा पर भी मेरा ध्यान रहे और आत्मा पर ध्यान रहना ही अप्रमाद है। आत्मा से दूर हो जाना प्रमाद होता है।

गृहस्थ को भी अप्रमाद की दिशा में आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहिए। मैं तात्त्विक भाषा में बताऊं तो अप्रमाद का गुणस्थान साधु की भूमिका में ही आता है। साधु में सामान्यतया छठा गुणस्थान होता है, किन्तु सातवां गुणस्थान भी साधु की भूमिका में ही आता है। गृहस्थपणा अगर भावों में है तो तत्त्व की भाषा में सातवां गुणस्थान या अप्रमाद की भूमिका नहीं आती, परन्तु अप्रमाद को सापेक्ष रूप में लें कि मोह-मूर्च्छा को कम करने का

Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

प्रयास एक गृहस्थ भी करता रहे तो उसका यह जीवन भी अच्छा होता है और उसे मरने के बाद भी सद्गति मिलने की संभावना बनती है। आदमी को आत्म-समीक्षण और आत्म-निरीक्षण करना चाहिए कि मेरे जीवन की स्थिति क्या है? मेरा जीवन कैसे बीत रहा है और मुझे जीवन में क्या करना चाहिए? आखिर जीवन का रथ तो अपनी गति से बढ़ता जा रहा है। हमारा समय सार्थक हो रहा है या ऐसे ही ढर्रे के रूप में हमारी जिन्दगी बीतती जा रही है। ज्यों-ज्यों अवस्था आगे बढ़े, त्यों-त्यों गृहस्थ के जीवन में धार्मिकता भी बढ़नी चाहिए।

यदि गृहस्थ त्याग और संयम युक्त जीवन जीता है तो अप्रमत्तता बढ़ती है। जीवन में अप्रमाद का होना सबके लिए कल्याणकारी होता है।

१५

अप्रमाद-रसिक बनें

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

एतं विसेसतो ञत्वा अप्पमादम्हि पण्डिता।

अप्पमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता।।२/२।।

पण्डित लोग अप्रमाद के विषय में इसे अच्छी तरह जान, बुद्ध द्वारा उपदिष्ट आचरण में रत हो, अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं।

दो मार्ग हमारे सामने हैं—एक प्रमाद का मार्ग, दूसरा अप्रमाद का मार्ग। आदमी चाहे तो अप्रमाद के मार्ग में आगे बढ़ सकता है और चाहे तो प्रमाद के मार्ग में आगे बढ़ सकता है। परन्तु कौनसा मार्ग आदमी को कहां ले जाने वाला है इस पर ध्यान देना चाहिए। मार्ग का चुनाव करना बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। बिना सोचे विचारे कोई रास्ता ले लिया जाता है तो पथिक का कितना नुकसान हो सकता है। इसलिए जहां अनेक रास्ते सामने हों वहां सोच-विचारपूर्वक मार्ग का चुनाव करना चाहिए। मंजिल तक पहुंचाने वाले मार्ग का चुनाव श्रेयस्कर होता है। कई बार पूछ-पूछ कर रास्ता खोजा जाता है। संस्कृत काव्य में कहा गया—'पृच्छकेन सदा भाव्यम्' अर्थात् आदमी को पूछते रहना चाहिए। पूछने से जानकारियां मिलती हैं और पूछते-पूछते 'भगवतो गृहमपि प्राप्तः' अर्थात् पूछने वाला पूछते-पूछते कभी भगवान् के दरबार में भी पहुंच सकता है। इसलिए हमें जीवन में सम्यक् मार्ग का चयन करना चाहिए। वह सम्यक् मार्ग है—अप्रमाद का मार्ग। प्रमाद का मार्ग दुःखों की ओर बढ़ाने वाला है और अप्रमाद का मार्ग परम सुख की ओर आगे बढ़ाने वाला है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

एक वह मार्ग है जो तत्काल में पटु (अच्छा) लगता है, परन्तु परिणामतः कटु होता है। दूसरा वह मार्ग है जो तत्काल में कष्टप्रद लगता है, परन्तु उसका परिणाम पटु आता है। दूरदर्शी अथवा परिणामदर्शी को यह विचार करना चाहिए कि तात्कालिकता का समय तो थोड़ा-सा है और परिणाम का समय लम्बा है। इसलिए तात्कालिकता में भले कष्ट भी आ जाए, किन्तु परिणाम में जो सुख देने वाला है वह मार्ग मुझे स्वीकार करना चाहिए। परमसुख या परिणाम में जो स्थायी सुख है, उसकी खोज करनी चाहिए। मनीषियों ने उसका रास्ता अप्रमाद बताया है।

इब्राहिम नाम का बादशाह था। वह कई बार सोचता—खुदा कैसे मिले? उसका पूर्वजन्म का कोई मित्र था, जो देव रूप में था, उसने सोचा कि इसे संबोध देना चाहिए। वह दिव्य शक्ति मनुष्य के रूप में आई और इब्राहिम के राजमहल की छत पर इधर-उधर घूमने लगी। इब्राहिम को जब यह बात ज्ञात हुई तो वह छत पर गया और पूछा—भाई! तुम कौन हो? यहां क्या कर रहे हो?

आगन्तुक ने कहा—महाशय! मैं किसान हूं।

इब्राहिम—आपका यहां आने का प्रयोजन?

आगन्तुक व्यक्ति—मेरा ऊंट गुम गया, मैं उसे खोजने के लिए यहां आया हूं।

इब्राहिम—नासमझ कहीं के, तुम्हारा ऊंट मेरे महल की छत पर कैसे मिलेगा? उसे तो कहीं जंगल में खोजो।

आगन्तुक व्यक्ति—महाशय! यदि महल की छत पर ऊंट नहीं मिल सकता तो महलों में सुख भोगते हुए तुमको खुदा कैसे मिलेगा? इतना-सा कहकर वह शक्ति अदृश्य हो गई।

आदमी भोगों में रत है, आसक्त है और फिर खुदा को भी पाना चाहता है। ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती। भोग प्रमाद का मार्ग है और भोगों का त्याग या संयम अप्रमाद का मार्ग है। धम्मपद के प्रस्तुत श्लोक में पण्डिता शब्द का प्रयोग किया गया। जो पण्डित लोग होते हैं वे अप्रमाद के मार्ग पर चलने वाले और आनन्द मनाने वाले होते हैं। पण्डित शब्द का सामान्य अर्थ है विद्वान्। ब्राह्मण को भी पण्डितजी कहा जाता है। शास्त्र आदि के जानकार या ज्योतिष विद्या के जानकर भी पण्डित कहलाते हैं। संस्कृत व्याकरण के अनुसार व्याख्या करूं तो 'पण्डा संज्ञाता अस्य स पण्डितः' जिसमें पण्डा का विकास हो गया, वह पण्डित कहलाता है। प्रश्न हो सकता है कि पण्डा क्या है? 'पण्डा तत्त्वानुगा' अर्थात् तत्त्व का अन्वेषण करने वाली बुद्धि पण्डा होती है और जिसमें पण्डा उत्पन्न हो गई वह व्यक्ति पण्डित कहलाता है। जैन वाङ्मय में पण्डित उसे कहा गया जो सर्व विरत होता है। आगम की भाषा में विरति की अपेक्षा, संयम की अपेक्षा मनुष्य पण्डित कहलाता है। राजस्थानी पद्य में कहा गया—

पढ़-पढ़ पोथा जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय।।

पण्डित वह होता है जो किसी एक या दो के साथ नहीं, अपितु प्राणीमात्र के साथ प्रेम भाव रखता है। प्रेम ऐसा तत्त्व है जो जीवन का सार है। जितने भी ग्रन्थ हैं, पंथ हैं, संत हैं, उन सबका एक सार यह है कि सबके साथ पवित्र प्रेम का विकास हो। इसलिए कहा गया—

वेद पुराण कुरान के, सारे अक्षर धोय।
प्रेम प्रेम लिख डारिए, कुछ नुकसान न होय।।

प्रेम का जीवन जीने वाला, मैत्री का जीवन जीने वाला और अहिंसा का जीवन जीने वाला व्यक्ति भी पंडित होता है। जो केवल दिखावा करने वाला है और साथ में छलना, वंचना करने वाला है तो वह प्रमाद की भूमिका है।

माता-पिता और पुत्र तीनों कार में बैठे थे। कार में गर्मी लगने लगी, तब लड़का बोला—मम्मी! खिड़की खोल लो।

मां—खिड़की बिलकुल नहीं खोलेंगे।

लड़का—क्यों नहीं खोलेंगे?

मां—मैंने अपनी पड़ौसी सहेलियों को यह बता रखा है कि हमारी कार तो ए.सी. है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

जहां छल-कपट है तो मानना चाहिए आदमी प्रमाद में जी रहा है और अप्रमाद से दूर है। धम्मपद में कहा गया कि जो पंडित होते हैं, वे अप्रमाद में आनन्द मनाते हैं। प्रमाद का आनन्द अलग होता है और अप्रमाद का आनन्द अलग होता है। भौतिक सुखों का आनन्द अलग होता है और आत्मिक सुखों का आनन्द अलग होता है। भोग में रहने वाला व्यक्ति भोग के सुखों को जान सकता है, पर परम उत्तम सुखों का वह स्पर्श भी नहीं कर सकता।

साधक ध्यान दे कि मेरे जीवन में अप्रमाद बढ़ रहा है या मैं अभी प्रमाद में ही समय बिता रहा हूं। मुझे चौबीस घण्टे मिलते हैं, उनमें से अप्रमाद में कितना समय बीतता है और प्रमाद में कितना समय बीतता है। हम छोटी-छोटी बातों पर ध्यान दें। एक साधक व्यक्ति ज्ञान का अभ्यास करता है, आगम पढ़ता है, तत्त्वज्ञान के ग्रन्थों को पढ़ता है, किसी को पढ़ाता है, सेवा करता है, इसका मतलब है कि शुभयोग में उसका समय व्यतीत हो रहा है। जिसका न कोई ज्ञानार्जन का लक्ष्य है, न कोई जीवन में सेवा का लक्ष्य है, मनोरंजन के लिए अखबार, पत्रिकाएं आदि पढ़ता रहता है, इसका मतलब है वह शुभयोग से दूर हो गया और प्रमाद में चला गया। हम स्वयं की समीक्षा करते रहें। बड़े व्यक्ति छोटों का ध्यान रखें कि उनका समय प्रमाद में बीत रहा है या अप्रमाद में बीत रहा है। गरीब आदमी पैसे को बहुत सोच-सोचकर खर्च करता है। गरीब मनुष्य की तरह समय को भी सोच-सोच कर काम में लगाएं ताकि उसका अच्छा उपयोग हो सके। अप्रमाद में रस लेने वाला व्यक्ति समय का अच्छा उपयोग करेगा जबकि प्रमाद में रत रहने वाले व्यक्ति का समय बेकार चला जाता है।

अप्रमाद में रस लेने वाला व्यक्ति ही अपने योगक्षेम के बारे में चिन्तन कर सकता है और उसे ही परम सुखों की प्राप्ति हो सकती है।

१६

पुरुषार्थ से मिले निर्वाण

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

ते झायिनो साततिका निच्चं दल्ह-परक्कमा।
फुसन्ति धीरा निब्बानं योगक्खेमं अनुत्तरं।।२/३।।

सतत ध्यान का अभ्यास करने वाले, नित्य दृढ़ पराक्रमी वीर पुरुष परम पद योग-क्षेम निर्वाण का लाभ करते हैं।

धार्मिक लोगों के मन में प्रभुदर्शन, आत्मदर्शन, मोक्ष-प्राप्ति की कामना रहती है। मोक्ष या निर्वाण उसे प्राप्त हो सकता है जो सतत ध्यान का अभ्यास करने वाला होता है। साधना का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है ध्यान। तेरापंथ धर्मसंघ में प्रेक्षाध्यान के नाम से ध्यान पद्धति चलती है। जिसका आविष्कार गुरुदेव तुलसी के निर्देशन में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने मुनि अवस्था में किया था। नाम के साथ मेरा कोई प्रतिबंधन नहीं है। नाम भले कुछ भी हो, काम अच्छा होना चाहिए। दुनिया में ध्यान की अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं। जिस पद्धति से लाभ हो, आत्मा शुद्ध बने, वही अच्छी है। जिस प्रयोग से राग-द्वेष कम हो जाए, वही प्रयोग अच्छा है। ध्यान का उद्देश्य छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी हो सकता है। छोटे उद्देश्य का मतलब है जो लक्ष्य शरीर के इर्द-गिर्द है। बड़े उद्देश्य का मतलब है जो आत्मा के इर्द-गिर्द है। क्योंकि शरीर अल्पकालिक है। इसलिए मात्र उसके लिए ही लक्ष्य बनाना छोटा लक्ष्य है और आत्मा स्थायी है। इसलिए उसका लक्ष्य बनाना बड़ा लक्ष्य है।

बौद्ध धर्म में विपश्यना के नाम से ध्यान पद्धति चालू है। उसमें भी प्रयोग

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

कराए जाते हैं। राग-द्वेष मुक्ति की ओर आत्मा अग्रसर हो सके, ऐसा लक्ष्य बनाकर आदमी को साधना में उतरना चाहिए। लक्ष्य बड़ा है तो बहुत सारे प्रयोग सहायक बन सकते हैं। आत्म-साक्षात्कार के लिए उसके प्रति समर्पित होने की अपेक्षा होती है। धम्मपद में जो कहा गया—योगक्खेमं अनुत्तरं अर्थात् ध्यान करने वाला और पराक्रम करने वाला अनुत्तर योगक्षेम को प्राप्त करता है। योगक्षेम शब्द जैन वाङ्मय में भी मिलता है, श्रीमद्भगवद् गीता में भी मिलता है और धम्मपद में भी प्राप्त होता है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण शब्द है। योगक्षेम शब्द का अर्थ है—'अप्राप्तस्य प्रापणं योगः प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमं' अर्थात् जो नहीं मिला है उसे पाना योग है और जो मिला हुआ है उसकी रक्षा करना क्षेम है। निर्वाण या मोक्ष एक ऐसा स्थान है जो पहले अप्राप्त होता है फिर प्राप्त हो जाता है और प्राप्त होने के बाद निरन्तर बना रहता है। इसलिए निर्वाण को भी योगक्षेम कह दिया गया। योगक्षेम के लिए अथवा निर्वाण के लिए ध्यान की आवश्यकता के साथ-साथ दृढ़ पराक्रम की भी आवश्यकता होती है। कठोर पुरुषार्थ करने वाले व्यक्ति निर्वाण को प्राप्त हो सकते हैं। जिसमें पराक्रम नहीं है, शौर्य नहीं है, कार्यक्षमता नहीं है, पुरुषार्थ नहीं है, निठल्लापन है तो वह निर्वाण की प्राप्ति में बाधा है। निठल्लापन, पुरुषार्थहीनता न केवल निर्वाण की प्राप्ति में बाधा है, अपितु हमारी व्यावहारिक दुनिया में भी विकास में अवरोध पैदा करने वाली होती है। पुरुषार्थ तो हर क्षेत्र में होना चाहिए, भले वह अध्यात्म का क्षेत्र हो, समाज का क्षेत्र हो या व्यापार का क्षेत्र हो। पुरुषार्थ सर्वत्र ग्राह्य होता है, आदरणीय होता है। पुरुषार्थहीन व्यक्ति दुनिया का कमजोर आदमी होता है। हमें आगम-साहित्य में भी उत्थान, कर्म, बल, पुरुषार्थ और पराक्रम की बात मिलती है। पुरुषार्थ करने वाला व्यक्ति साफल्य को प्राप्त हो सकता है।

एक बार गोष्ठी हो रही थी। उसमें भगवान् महावीर के बारे में प्रसंग चला। जैन-अजैन कई विद्वान् उसमें सम्मिलित थे। वहां जैनदर्शन का सिद्धांत चर्चित हुआ और बताया गया कि जैनदर्शन ईश्वरवाद को नहीं मानता, ईश्वर को कर्ताधर्ता नहीं मानता और सुख-दुःख में हस्तक्षेप करने वाला भी नहीं मानता। एक अजैन विद्वान् खड़ा हुआ और बोला—आपके आराध्य भगवान् महावीर हैं। आपके दर्शन के अनुसार महावीर तो आपका कोई भला कर नहीं सकते, चूंकि वे तो सिद्ध हो चुके हैं। आप दुःखी हैं तो भी वे आपके दुःख को दूर नहीं करते, ऐसे नपुंसक महावीर को मानने से क्या लाभ है? एक जैन विद्वान् भी वहां बैठा था। उसने स्पष्टीकरण दिया कि भगवान् महावीर ने तो पुरुषार्थ का सिद्धांत दिया है। उन्होंने कहा—स्वयं पुरुषार्थ करो। यह आत्म-कर्तृत्ववाद का सिद्धांत देकर उन्होंने दुनिया को भी नपुंसक होने से बचा लिया, वरना दुनिया उनके भरोसे नपुंसक रह जाती। खैर, ये तो तर्क वितर्क की बातें हैं। एक बात का खंडन और दूसरी बात का मंडन हो सकता है, किन्तु हमें तो तत्त्व को समझना है। आदमी के जीवन में पुरुषार्थ आना चाहिए। यह एक तत्त्व की बात है। हम व्यवहार के धरातल पर भी देखें कि पुरुषार्थ के बिना कितना काठिन्य सामने आ सकता है। और तो क्या चोर को भी पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है। बिना पुरुषार्थ के चोरी करना भी संभव नहीं है। यदि आदमी में सम्यक् पुरुषार्थ होता है तो वह निर्वाण की ओर ले जाने वाला होता है। पुरुषार्थ के द्वारा व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार कर सकता है। इसके साथ-साथ धम्मपदकार ने कहा—निर्वाण को वह व्यक्ति प्राप्त कर सकता है जो सतत ध्यान की साधना में रहने वाला है। हालांकि चौबीस घंटे कोई ध्यान करे, यह तो मुश्किल है, परन्तु राग-द्वेष मुक्त अवस्था में रहने का प्रयास करना भी एक प्रकार की बड़ी साधना होती है। आदमी यह चिन्तन करे कि मैं कुछ भी काम करूं, किसी से मिलूं, मन में विचार भी करूं तो राग-द्वेष मुक्त रहूं। मेरे भीतर कोई शल्य न रहे।

जैन वाङ्मय में तीन शल्य बताए गए हैं—मायाशल्य, निदानशल्य, मिथ्यादर्शनशल्य। शल्य निकल जाता है तो कितनी शांति मिलती है। अगर चलते समय पैर में कांटा चुभ जाता है तो कितनी पीड़ा होती है। उस समय कोई निपुण व्यक्ति उस कांटे को निकाल देता है तो कितनी शांति मिलती है।

इसी प्रकार हमारे मन में, हमारी चेतना में माया, निदान, मिथ्यादर्शन शल्य होता है तो हमारी चेतना अस्वस्थ हो जाती है। आचार्य उमास्वाति का बड़ा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है—'तत्त्वार्थ सूत्र'। उसमें कहा गया—निःशल्यो व्रती

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

अर्थात् जो व्रती है, संयमी है, वह शल्य मुक्त होता है। उसकी चेतना शुद्ध होती है।

धम्मपदकार ने बहुत सुन्दर कहा कि जो सतत ध्यान करने वाले हैं, राग-द्वेष मुक्ति का अभ्यास करने वाले हैं और पुरुषार्थशील हैं, वे परम योगक्षेम अनुत्तर निर्वाण को प्राप्त हो सकते हैं।

१७

यश-प्राप्ति का अधिकारी कौन?

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

जट्ठानवतो सतिमतो सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो।
सञ्ञतस्स च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्स यसोभिवड्ढति।।२/४।।

जो उद्योगी, सचेत, शुचि कर्म वाला तथा सोचकर काम करनेवाला है और संयम, धर्मानुसार जीविका वाला एवं अप्रमादी है, उसका यश बढ़ता है।

आदमी के मन में यह भावना रहती है कि मेरी समाज में प्रतिष्ठा रहे, परिवार में प्रतिष्ठा रहे, लोग मुझे आदर सत्कार दें। हालांकि यह भावना बहुत उत्तम नहीं है, किन्तु बहुत खराब भी नहीं है। प्रतिष्ठा पाने की कामना है तो साथ में यह सोचना होगा कि उसके अनुरूप आचरण है या नहीं। आदमी बदनामी वाला आचरण करे और यश पाने की भावना रखे तो यश कैसे मिलेगा? साधन अलग है और साध्य अलग है। साधन और साध्य में एकरूपता आवश्यक होती है। साधन गलत है तो फिर साध्य की प्राप्ति कैसे होगी? साध्य के अनुरूप साधन होना चाहिए। एक आदमी देखता है कि पर्वत पर धुआं निकल रहा है तो अनुमान लगाया जा सकता है कि अग्निमान पर्वत है। धुआं निकल रहा है। इसलिए पर्वत पर अग्नि है। यह बहुत स्पष्ट जाना जा सकता है। क्योंकि धुआं ठीक हेतु बनता है अग्नि का। परन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि अग्नि दिख रही है तो धुआं है ही। यह हेतु ठीक नहीं बनता। धुएं के बिना भी अग्नि हो सकती है, पर अग्नि के बिना धुआं नहीं हो सकता। साध्य और साधन का ठीक तालमेल होता है तब साध्य-सिद्धि की बात हो सकती है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

जिस आदमी ने यश पाना अपना साध्य बना लिया उसका पहला साधन बताते हुए धम्मपदकार ने कहा कि जो आदमी उद्योगशील होता है, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। जो कुछ काम नहीं करता, उसकी प्रतिष्ठा कैसे बढ़ेगी। हमारे यहां एक कहावत चलती है—काम प्यारो लागै, चाम प्यारी कोनी लागै अर्थात् कार्य करोगे तो अच्छे लगोगे, केवल चमड़ी किसी को प्यारी नहीं लगती। पुरुषार्थी व्यक्ति को दूसरे भी प्यार करेंगे, सम्मान देंगे और प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। समाज में भी काम करने वाले लोगों का सम्मान होता है। परिवार में कमाई करने वाले, कार्य करने वाले पुत्र का सम्मान बढ़ता है। दूसरा साधन बताया गया कि जो स्मृतिमान है, जागरूक है, केयरफुल है, हर बात के प्रति सतर्क रहने वाला है, उस आदमी की प्रतिष्ठा बढ़ती है। जो जागरूक नहीं रहता, सतर्क नहीं रहता, अलर्ट नहीं रहता, उस व्यक्ति की प्रतिष्ठा प्राप्ति में बाधा है। तीसरा साधन बताया गया कि जो शुचि कर्म वाला, पवित्र आचरण वाला, किसी को धोखा नहीं देने वाला, सीधा सरल जीवन जीने वाला व्यक्ति होता है, उसका यश बढ़ता है। चौथा साधन बताया गया कि जो सोच-विचारपूर्वक काम करने वाला है, उसका यश बढ़ता है। जो बिना सोचे-विचारे जल्दबाजी में काम कर लेता है, उसे कई बार अपमान झेलना पड़ता है। इसलिए सोच-विचारपूर्वक और समझदारी के साथ आदमी को काम करना चाहिए। पांचवां साधन बताया कि जो संयत है, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है।

किसी मंत्री के घर एक व्यक्ति मिलने के लिए गया। आगन्तुक आदमी लगभग आधा घंटा मंत्रीजी के पास बैठा, बातें कीं। जब वापिस जाने लगा तब बोला—महोदय! आपकी अनुमति हो तो जाते-जाते एक जिज्ञासा कर लूं?

मंत्रीजी—बोलो, क्या जिज्ञासा है।

आगन्तुक—महोदय! हमने आधा घण्टा वार्तालाप किया। उस दौरान दो-तीन बार एक महिला आई और कुछ बोलती जा रही थी। वह इतनी असभ्य महिला कौन थी?

मंत्रीजी—भैया! वह तो मेरी पत्नी है।

अब आगन्तुक सहमा कि मैंने गलत बात पूछ ली। उसने कहा—महोदय! ऐसा मुझे नहीं पूछना चाहिए था, परन्तु पूछ लिया। यह मैंने भूल की है।

मंत्रीजी—भैया! भूल तो मैंने की है, ऐसी वाचाल महिला के साथ शादी करके। कहने का तात्पर्य यह है कि जिसमें वाणी का संयम नहीं होता, उसकी प्रतिष्ठा कम हो जाती है।

छठा साधन बताया कि जो धर्म के साथ जीविका चलाने वाला होता है यानी व्यवसाय, व्यापार में धर्म को साथ में रखता है, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। जो अधर्म के द्वारा जीविका प्राप्ति नहीं करता, नैतिकता रखता है, उसका यश बढ़ता है। अनुभव करके भी देखा जा सकता है कि बाजार में कोई धोखाधड़ी करने वाला व्यापारी होता है, उसकी प्रतिष्ठा में कमी आ जाती है। जो ईमानदारी के साथ काम करने वाला होता है, ग्राहकों का विश्वासपात्र होता है, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। ग्राहक भी वहां ज्यादा जाने का प्रयास करते हैं।

सातवां और अन्तिम साधन बताया कि जो अप्रमत्त होता है, अध्यात्म के प्रति जागरुक होता है, अपने कार्य के प्रति निष्ठावान होता है, ऐसे व्यक्ति का यश बढ़ता है। जीवन में विवेक होना चाहिए। विवेक है तो संयम भी हो सकता है। महान् तत्त्वज्ञानी सुकरात एक बार अपने शिष्यों को पढ़ा रहा था। उसी दौरान कोई सामुद्रिकशास्त्री आया। सामुद्र शब्द का अर्थ बताते हुए कहा गया—'सामुद्रं देहलक्षणम्' अर्थात् सामुद्रशास्त्र वह होता है जो शरीर के अवयवों के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्णन कर देता है या भविष्य की बात बता देता है। सामुद्रिक शास्त्री ने सुकरात को देखा और शिष्यों से कहा—आपके गुरु तो निकृष्ट आदमी हैं, इनसे क्या पढ़ते हो? इनके नाक की बनावट इस बात की द्योतक है कि यह आदमी बड़ा गुस्सैल है। इनके होठों को देखकर लगता है कि भविष्य में यह देशद्रोही आदमी बनेगा। इनके पूरे चेहरे को देखता हूं तो लगता है कि यह कोई विचित्र प्रकार का आदमी है, अच्छा आदमी नहीं है। अपने गुरु की निन्दापूर्ण बातों को सुनकर शिष्य गुस्से में आ गए और उसको मारने के लिए तैयार हो गए। सुकरात ने शिष्यों को रोका और कहा—यह विद्वान् आदमी है, ज्ञानी आदमी है, इसको मत मारो। जब वह वापस जाने लगा तो सुकरात ने उसे उपहार दिया और बड़े सम्मान के साथ विदा किया। शिष्य बोले—गुरुदेव! जिसने आपकी इतनी निन्दा की। उसका आपने

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

सम्मान क्यों किया? सुकरात ने कहा—वह अपने शास्त्र का विद्वान् था। उसने कोई गलत बात नहीं कही, पर उसने बात कहने में थोड़ी कमी रख दी। उसने मेरी एक विशेषता नहीं बताई। वह मैं बता देता हूं। ठीक है, मेरे में लालच है, गुस्सा है, कुछ द्रोह की बात भी हो सकती है। इन सबके साथ एक विशेषता यह है कि मेरे में विवेक है। विवेक के कारण मैं अपने लालच, गुस्से आदि को कन्ट्रोल में रखता हूं। एक विवेक जीवन में आ गया तो अनेक विशेषताएं जीवन में आ जाती हैं।

धम्मपदकार ने कुछ बातें बताकर पथदर्शन देने का प्रयास किया है। इस प्रकार की जीवनशैली जिस आदमी की बन जाती है, वह पापकर्मों के बंधन से बच जाता है। वैसे तो बात-बात में पापकर्म का बंधन तैयार रहता है, किन्तु जहां जागरूकता है, अप्रमाद है, संयम है, वहां व्यक्ति पापकर्मों के बंधन से अपनी रक्षा कर लेता है। दूसरा हमारा नुकसान उतना नहीं कर सकता जितना नुकसान हमारी खुद की आत्मा करती है। इसलिए आदमी पापों से बचने का प्रयास करे और अपनी आत्मा को उन्नति की ओर तथा मोक्ष की ओर अग्रसर करने का लक्ष्य बनाए।

१८

आत्मद्वीप का निर्माण करें

आदमी को सुरक्षित स्थान की दृष्टि से द्वीप की अपेक्षा होती है। वह बाहर का द्वीप होता है। धम्मपदकार ने एक ऐसा आत्मा का द्वीप बनाने का निर्देश दिया है जिस द्वीप का निर्माण करने के लिए मिट्टी की अपेक्षा नहीं, पत्थरों की अपेक्षा नहीं, बस साधना की अपेक्षा होती है। साधना है तो वह आत्मा का द्वीप एक अच्छे रूप में तैयार हो सकता है और व्यक्ति की सुरक्षा भी कर सकता है। धम्मपदकार ने सुन्दर द्वीप-निर्माण के लिए चार बातें बताते हुए कहा है—

उट्ठानेनप्पमादेन सञ्ञमेन दमेन च।
दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति।।२/५।।

मेधावी पुरुष उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम (इन्द्रिय-दमन) द्वारा अपने लिए ऐसा द्वीप बनाए, जिसे बाढ़ नहीं डुबा सके।

पहला उपाय है—उद्योग। आलस्य मनुष्य का ऐसा शत्रु है जो शरीर में रहता है और उसका नुकसान करता है। जबकि परिश्रम ऐसा बंधु है जिसका आश्रय लेने वाला कभी दुःखी नहीं बनता। सुरक्षित द्वीप-निर्माण के लिए पुरुषार्थशीलता का जीवन में विकास करना, पुरुषार्थी बना रहना आवश्यक है। पुरुषार्थ भी ठीक दिशा में होना चाहिए। अगर गलत दिशा में पुरुषार्थ होता है तो वह विध्वंसकारी हो सकता है। मात्र पुरुषार्थ होना ही बड़ी बात नहीं, सम्यक् पुरुषार्थ होना, रचनात्मक पुरुषार्थ होना बड़ी बात होती है।

दूसरा उपाय है—अप्रमाद। अपने कार्यों के प्रति, कर्त्तव्यों के प्रति और अध्यात्म के प्रति जागरूकता यानी अप्रमाद रहे। क्योंकि जहां प्रमाद होता है

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only.nly https://books.jvbharati.org

वहां अजागरूकता होती है और जहां अप्रमाद होता है वहां जागरूकता होती है। अतः एक सुन्दर द्वीप-निर्माण करना है, जहां आत्मा सुरक्षित रह सके तो अप्रमाद को स्वीकार करना, अप्रमत्त जीवन जीना आवश्यक होता है। आदमी के जीवन में यदाकदा प्रमाद भी आ जाता है, परन्तु जागरूकता बढ़े तो प्रमाद से बहुत बचा भी जा सकता है।

प्राचीन साहित्य में अहालंदक मुनि का उल्लेख मिलता है। वे इस बात के प्रति बहुत जागरूक रहते थे कि थोड़ी देर भी प्रमाद न हो जाए। वर्तमान में कोई अहालंदक बन सके, यह कठिन बात है, परन्तु अप्रमाद की साधना तो अभी भी की जा सकती है। यद्यपि यह सिद्धान्त है कि सातवां गुणस्थान अप्रमत्तता का है जो एक मुहूर्त्त से ज्यादा नहीं रहता। इसलिए बीच में भले थोड़ा-सा प्रमाद आ जाए, परन्तु बहुत-सा समय अप्रमाद में बीते, ऐसा प्रयास होना चाहिए।

तीसरा उपाय है—संयम। संयम की साधना करने से, संयम का अभ्यास करने से एक सुरक्षित द्वीप का निर्माण हो सकेगा। मन का संयम, वाणी का संयम, काया का संयम, यह त्रिविध संयम एक अच्छे द्वीप का निर्माण कर सकता है।

चौथा उपाय है—दम। दम का अर्थ है इन्द्रिय-दमन, इन्द्रियों का संयम, इन्द्रियों का निग्रह। आदमी को पांच ज्ञानेन्द्रियां प्राप्त हैं। उनका दमन करना चाहिए यानी वे गलत रूप में प्रवृत्त न हों। इन्द्रियों का संयम किया जाए और उन्हें राग-द्वेष से बचाया जाए।

जहां धम्मपदकार ने द्वीप-निर्माण की बात कही, वहीं उत्तराध्ययनकार ने घर-निर्माण की बात कही। प्रश्न होता है कि घर कहां बनाया जाए? आगमकार ने कहा—

संसयं खलु सो कुणई, जो मग्गे कुणई घरं।
जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा, तत्थ कुव्वेज्ज सासयं।।९/२६।।

वह संदिग्ध ही बना रहता है जो मार्ग में घर बनाता है। (न जाने कब उसे छोड़कर जाना पड़े) अपना घर वहीं बनाना चाहिए जहां जाने की इच्छा हो—जहां जाने पर फिर कहीं जाना न पड़े।

जो व्यक्ति मार्ग में घर बना लेता है, उसके सामने खतरा रहता है। घर वहां बनाना चाहिए, जहां कोई खतरा न हो। रास्ते के बीच में अगर घर बना लिया तो आने-जाने वाले आएंगे-जाएंगे कैसे?

कुछ लोग अवैध निर्माण करवा लेते हैं। कई बार उनके सामने समस्या भी आ सकती है। अवैध निर्माण का कभी ध्वंस भी किया जा सकता है। यह तो भौतिक जगत की बात है। इसका आध्यात्मिक तात्पर्य है कि आदमी को यह विचार करना चाहिए कि मेरा स्थायी घर कौनसा है? मैं वर्तमान में इंसान हूं, यह मेरा स्थायी घर नहीं है। यहां तो मैं अस्थायी हूं, कुछ समय के लिए हूं और कितना समय मुझे मिलेगा, यह कहना भी मुश्किल है।

हमारा स्थाईवास तो आत्मा में हो सकता है। हम उस आत्मा की खोज करने का, उसे पाने का प्रयास करें। ज्यों-ज्यों हम बाहर से भीतर आते हैं, त्यों-त्यों सुलभता से प्राप्त विषय-भोगों से विरति होती चली जाती है। ज्यों-ज्यों विषय-भोगों से विरति होती है, त्यों-त्यों उत्तम तत्त्व की प्राप्ति होती है। यह एक चक्रक है। विषय-भोग की विरति से उत्तम तत्त्व की प्राप्ति और उत्तम तत्त्व की प्राप्ति से विषय-भोग की विरति। हम विषय-भोग से विरति का अभ्यास करें तो अपने घर में आ सकेंगे। परमपूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी ने एक गीत में लिखा है—

आएं आएं हम आएं, अपने घर भीतर आएं।
अपने घर भीतर आकर, हम सदा सुखी बन जाएं।।

जो व्यक्ति अपने घर में आ जाता है या अपने घर में रहना सीख लेता है, वह पूर्ण सुरक्षित बन जाता है, परम शांति में रहता है। जब-जब आदमी अपने घर से बाहर जाने का प्रयास करता है, तब-तब अशांति व दुःख उसे आक्रान्त कर लेता है। इसलिए आदमी अपना स्थाई घर बनाए और वह भी ऐसी जगह बनाए जहां पूर्णतया सुरक्षित हो। वह स्थान होगा मोक्ष। वहां घर बनाने पर कोई उसे हटा नहीं सकता। उसके लिए आवश्यक है आदमी का दृष्टिकोण सम्यक् हो, संयम का अभ्यास हो, अप्रमाद व अकषाय की साधना हो। फिर एक ऐसा अच्छा मकान निर्मित होगा, जिसमें हम परम आनन्द को प्राप्त कर सकेंगे।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

१९

अप्रमाद की रक्षा करें

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

पमादमनुयुंजन्ति बाला दुम्मेधिनो जना।
अप्पमादं च मेधावी धनं सेट्ठं'व रक्खत।।२/६।।

मूर्ख, अनाड़ी लोग प्रमाद में लगते हैं, बुद्धिमान् श्रेष्ठ धन की भांति अप्रमाद की रक्षा करता है।

जो व्यक्ति अज्ञानी होता है, नासमझ होता है या जिसके मोह का विशेष विलय नहीं होता है, वह व्यक्ति प्रमाद में लगा रहता है। जो व्यक्ति बुद्धिमान है, जिसके मोह का आवरण कुछ कम है, वह व्यक्ति अप्रमाद की रक्षा वैसे ही करता है, जैसे एक बुद्धिमान सेठ अपने धन की रक्षा करता है। वह सोचता है, जैसे-तैसे किसी भी तरीके से धन सुरक्षित रह जाए। एक सेठ खूब धनार्जन करके आ रहा था। उसे एक ट्रेन से दूसरी ट्रेन में बैठना था। बीच में लगभग आठ-दस घंटों का अन्तराल था। उसने सोचा—मुझे स्टेशन पर आठ-दस घंटों तक अगली ट्रेन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इतना धन मेरे पास है, उसकी सुरक्षा कैसे हो पाएगी? तभी एक उपाय दिमाग में आया। उसने अपने आपको अपराधी के रूप में परिणत कर लिया। जब टी.टी. ने टिकिट दिखाने के लिए कहा तो उसने टिकिट नहीं दिखाई। बिना टिकिट यात्रा करने के अपराध में उसको अपराधी मान लिया गया। ज्योंहि वह स्टेशन पर उतरा, उसको जेल में डाल दिया गया। पूरी रात वह जेल में रहा। सवेरे उठा, पूछताछ की गई। अधिकारी ने कहा—यह बिना टिकिट के यात्रा करने वाला यात्री है। इसलिए इसे जेल में डाला गया। यात्री ने कहा—साहब! टिकिट मेरे पास है। अधिकारी ने पूछा—फिर तुम जेल में क्यों आए? उसने कहा—साहब! बात यह है कि मेरे पास काफी धन था। मैंने सोचा, इतने धन की सुरक्षा कैसे हो सकती है? तब दिमाग में बात आई कि अगर जेल में रह जाऊं तो वहां मेरे धन की अच्छी सुरक्षा हो जाएगी। इसलिए मैंने अपराधी के रूप में अपने आपको दिखाया।

धम्मपदकार ने कहा कि जैसे सेठ धन की रक्षा करता है, वैसे साधक आदमी अप्रमाद की रक्षा करे। अप्रमाद की रक्षा करने वाला इधर-उधर की बातें न करे। इनमें समय का व्यर्थ व्यय होता है। आदमी काम की बात करे। व्यर्थ की गपशप करने से मन तो बहल सकता है, परन्तु आत्मा का लाभ नहीं होता। दो मित्र बैठे थे। गपशप कर रहे थे। एक ने कहा—मेरा दादा इतना धनवान था कि पांच करोड़ छोड़कर मरा था। दूसरा मित्र बोला—मेरा दादा तो पूरी दुनिया को छोड़कर मरा था। ऐसी बातों से दिमागी व्यायाम तो हो सकता है, पर सार कुछ नहीं निकलता है। केवल वाणी की ही बात नहीं, शारीरिक चेष्टा भी ऐसी न हो जो व्यर्थ प्रवृत्ति कराने वाली हो।

दसवेआलियं में कहा गया—

हत्थसंजए पायसंजए, वायसंजए संजइंदिए।
अज्झप्परए सुसमाहियप्पा, सुत्तत्थं च वियाणई जे स भिक्खू।।१०/१५

जो हाथों से संयत है, पैरों से संयत है, वाणी से संयत है, इन्द्रियों से संयत है, अध्यात्म में रत है, भलीभांति समाधिस्थ है और जो सूत्र और अर्थ को यथार्थ रूप से जानता है, वह भिक्षु है।

जो भिक्षु होता है, वह अप्रमाद का साधक भी होता है। साधना की जाती है, उससे आत्मा का लाभ तो होता ही है, साथ में पुण्य का बंध भी होता है। वह पुण्य जब उदय में आता है, तब आदमी को बाह्य सुख भी प्राप्त हो जाते हैं। अप्रमाद की साधना का मुख्य उद्देश्य आत्मा की शुद्धि और मोक्ष की प्राप्ति है। उसके लिए संकल्प चाहिए, सूझबूझ के साथ प्रयास होना चाहिए, तब आदमी अप्रमाद की दिशा में आगे बढ़ सकता है। अप्रमाद की केवल कल्पना करना भी अच्छा है, किन्तु कल्पना के साथ वास्तविकता आ जाए,

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

वह कल्पना संकल्प बन जाए तो अप्रमाद की साधना अच्छी होती है। आदमी मात्र कल्पना तक ही रह जाए, आगे कुछ भी न करे तो अप्रमाद की साधना असंभव या कठिन भी है।

सेठ ने एक मजदूर से पूछा—काम करोगे?

मजदूर—मैं तो काम करने के लिए ही हूं। आप मुझे अगर मजदूरी देंगे तो काम कर दूंगा। बोलो, क्या काम है?

सेठ—दीपक से भरा हुआ यह एक बोरा है। इसे तुम उठाकर मेरे घर तक पहुंचा दो।

मजदूर—आप मुझे मजदूरी क्या देंगे?

सेठ—पांच रुपया दूंगा।

उस समय पांच रुपये भी बहुत होते थे। उस मजदूर ने वह दीपकों का बोरा मस्तक पर रखा और चलने लगा। चलते-चलते वह सोचने लगा कि मैं इस बोरे को ले जाऊंगा, तब मुझे पांच रुपये मिल जाएंगे। फिर मैं व्यापार करूंगा। जब कुछ रुपये इकट्ठे हो जाएंगे, तब मेरी शादी की तैयारी होगी। मेरे परिवार के लोग मुझे मनोज्ञ पदार्थ खाने की मनुहार करेंगे, मैं कहूंगा अभी नहीं, अभी नहीं। जैसे ही ना करने के लिए मस्तक हिलाया, बोरा नीचे गिर गया और प्रायः दीपक टूट गए।

सेठ—यह क्या किया, मेरे सैकड़ों दीपक तोड़ दिए।

मजदूर—मालिक! आपके तो दीपक ही टूटे हैं, मेरा तो सारा संसार ही टूट गया।

वह कल्पना में इतना बह गया कि वर्तमान भी खराब हो गया। कल्पना के साथ जागरूकता होनी चाहिए। अप्रमाद की साधना के लिए भी बार-बार विचार करना चाहिए कि मैं बेकार की बातें नहीं करूं, शरीर का असंयम नहीं करूं, और तो क्या मेरे मन में भी राग-द्वेषात्मक विचार न आएं। ऐसा मात्र चिन्तन ही न करे, प्रयास भी करे तो साधक अप्रमाद की साधना में आगे बढ़ सकता है।

धम्मपद में बड़ा सुन्दर तथ्य बताया गया है कि जो लोग मोह से आवृत हैं या दुर्मेधा हैं, बाल हैं, अज्ञानी हैं, वे प्रमाद में लगे रहते हैं। जैन वाङ्मय में कहा गया—'मंदामोहेण पाउडा' अर्थात् जो मोह से आवृत्त होते हैं, वे मंद होते हैं। जिस प्रकार सूर्य के आगे बादल आ जाता है तो उसकी धूप और तेज मंद हो जाता है। ज्योंहि वह बादल हटता है, सूर्य अपनी तेजस्विता के साथ सामने आ जाता है। इसी तरह हमारी आत्मा भी एक प्रकार का सूर्य है। जब मोह का बादल सामने आता है तो उसकी तेजस्विता कम हो जाती है और ज्योंहि मोह का बादल हटता है तो आत्मा की तेजस्विता प्रकट हो जाती है। हम भगवान् महावीर को देखें, उन्होंने कितनी अमोह की साधना की, दीर्घकालीन तपस्याएं कीं और ध्यान की साधना की। आखिर साधना करते-करते करीब साढ़े बारह वर्ष संपन्न हुए और केवलज्ञान का सूर्य उन्हें प्राप्त हो गया। लगभग साढ़े बारह वर्ष तो इस जन्म के हैं, पिछले जन्मों में भी उन्होंने कितनी साधना की है। पृष्ठभूमि मजबूत थी। इसलिए मात्र लगभग साढ़े बारह वर्षों की साधना से उन्हें कैवल्य प्राप्त हो गया। पीछे की पृष्ठभूमि मजबूत न हो तो अनन्त काल बीत जाता है, किन्तु कैवल्य की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए हम यह मानें कि केवल एक जन्म की साधना प्रायः नहीं होती। जब भी व्यक्ति साधना करता है, उसका फल उसे प्राप्त होता है। कभी परिणाम देरी से भी मिल सकता है और कभी जल्दी भी मिल सकता है, परन्तु परिणाम मिलता अवश्य है। यदि तपस्या अपूर्ण रह जाती है तो आगे के जन्मों में फिर कभी साधना का मौका मिल सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में योगभ्रष्ट शब्द आता है यानी जो योग से भ्रष्ट हो गया या जिसकी योगसाधना बीच में रह गई। उसे फिर जन्म लेने का मौका मिलता है। वहां वह अवशेष साधना को पूरा भी कर सकता है। साधक के मन में यह रहे कि मैं अपनी साधना करता रहूं, साधना में आगे बढ़ूं। यदि कुछ अवशेष रह जाएगा तो मुझे बाद में मौका मिलेगा, तब करूंगा।

अप्रमाद की साधना तो बहुत ऊंची बात है। जो गृहस्थ हैं, वे विरति की साधना करें। सर्वविरति के बाद अप्रमाद की साधना की बात आती है। वह तात्त्विक दृष्टि वाला अप्रमाद है, किन्तु पाप जो स्थूल प्रमाद है, उससे बचने के

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

रूप में अप्रमाद की साधना या पापों से बचने की साधना तो गाहस्थ्य में भी हो सकती है। श्रावक या गृहस्थ या साधक के जीवन में अनुकम्पा की चेतना जाग जाए। अनुकम्पा एक ऐसा शब्द है जो जैन वाङ्मय में व्यवहृत हुआ है। भीतर में अनुकंपन हो कि मैं पाप से बचूं, मेरे द्वारा किसी प्राणी की हिंसा न हो जाए, मैं किसी का दुःख दूर करूं और चित्तसमाधि पैदा करूं। इस प्रकार का भाव भीतर में होता है तो समझना चाहिए कि वह कोई भव्य आत्मा है, पुनीत आत्मा है। क्योंकि सम्यक्त्व के जो पांच लक्षण बताए गए हैं, उनमें एक है अनुकम्पा यानी प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव। अनुकम्पा के द्वारा सातवेदनीय का बंध होता है। जिसमें अनुकम्पा है वह हिंसा से अपना बचाव करता है, झूठ-कपट आदि के द्वारा भी दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहता। साधु के लिए एक विधान है ईर्यासमिति का। वह ईर्यापूर्वक देख देखकर चले। छोटा-मोटा जन्तु भी पांव के नीचे आकर मर न जाए। और तो क्या, स्थावर जीवों की हिंसा से भी वह बचने का प्रयास करता है। इस प्रकार यह अनुकम्पा की चेतना आत्मशुद्धि का एक बड़ा आधार बनती है। जिसमें अनुकम्पा की भावना है, उस व्यक्ति को मोक्ष भी कुछ जल्दी मिलने की संभावना बन सकती है। एक अनुकम्पा की चेतना जाग गई तो मानना चाहिए कि अप्रमाद की दिशा में हमारी गति हो रही है। हम प्रमाद से मुक्त होने की दिशा में और अप्रमाद की दिशा को साधने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।

धम्मपद में बड़ा सुन्दर कहा गया कि साधक को अप्रमाद की रक्षा वैसे ही करनी चाहिए जैसे सेठ ने धन की रक्षा की। जो अज्ञानी है, मोहग्रस्त है, वह प्रमाद में लगा रहता है। प्रमाद में लगे हुए व्यक्तियों को देखकर साधक यह सोचे कि ये तो प्रमाद में हैं। मैं इनसे शिक्षा लूं और अपनी आत्मा को प्रमाद से बचाता रहूं।

२०

प्रमाद में मत फंसो

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

मा पमादमनुययुञ्जेथ मा कामरतिसन्थवं।
अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं।।२/७।।

मत प्रमाद में फंसो, मत काम-रति में लिप्त हो। प्रमादरहित पुरुष ध्यान करते महान् सुख को प्राप्त होता है।

आदमी के मन में सुख पाने की भावना रहती है, परन्तु शांति पाने की भावना कम रहती है। पदार्थों से मिलने वाला आनन्द है वह सुख है और भीतर से मिलने वाला जो आनन्द है वह शांति है। आदमी सुख पाने का ज्यादा प्रयास करता है। उसका शान्ति से कोई विशेष संबंध नहीं होता। महात्मा बुद्ध से किसी ने पूछा—सुख और शान्ति क्या है? महात्मा बुद्ध ने कहा—आम लोग जिसकी कामना करते हैं वह सुख है, शान्ति तो आत्मा से मिलने वाली चीज है। उस व्यक्ति ने कहा—हमें कैसे पता चले कि लोगों में कामना सुख की है या शांति की है? महात्मा बुद्ध के कथनानुसार वह प्रश्नकर्ता उस शहर में घूमा, व्यक्ति-व्यक्ति से मिला और पूछा—आपको क्या चाहिए? किसी ने कहा—मुझे पुत्र चाहिए। किसी ने पैसा प्राप्त करने की भावना व्यक्त की। किसी ने प्रतिष्ठा की मांग की। लोग इन बाह्य चीजों की कामना करते रहे, पर मुझे आत्मिक शांति मिले, यह बात किसी ने नहीं कही। आदमी तात्कालिक सुखों को पाने का प्रयास करता है, परन्तु उन तात्कालिक सुखों में जो रच-पच जाता है, वह व्यक्ति आत्मिक सुखों से दूर रह जाता है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया कि जो स्पर्श आदि से जुड़े हुए बाह्य सुख हैं वे तो आने वाले और चले जाने वाले हैं, स्थायी रहने वाले नहीं हैं। स्थायी रहने वाला आत्मिक सुख है। उसको पाने के लिए धम्मपद में कहा गया कि तुम प्रमाद में मत फंसो और काम-रति के परिचय से मुक्त रहो। अप्रमत्त अवस्था में रहकर ध्यान की साधना करो तो तुम्हें विपुल सुखों की प्राप्ति हो जाएगी। प्रमाद के अनेक प्रकार हैं। उनमें नशा भी एक प्रकार का प्रमाद है। उससे भी आदमी उन्मत्त बनता है। मद्यपान ऐसा प्रमाद है जो आदमी को दिग्मूढ़-सा बना देता है। क्या करना, क्या नहीं करना, कौन मेरे सामने हैं, इन स्थितियों का भी भान उसे नहीं रहता। हम लोग यात्राएं करते हैं, तब गांवों में भी जाते हैं और शहरों में भी जाते हैं। लोगों से सम्पर्क होता है, तब पता चलता है कि गांवों में भी नशा चलता है और शहरों में भी नशा चलता है। गांवों के लोग तो जो श्रम करके पैसा कमाते हैं, कुछ गरीब भी होते हैं, फिर भी वे अपना पैसा नशे में गंवा देते हैं। कुछ ऐसे व्यसन हैं, जो गरीब लोगों की गरीबी को समाप्त होने ही नहीं देते। गुरुदेव तुलसी दक्षिण भारत की यात्रा कर रहे थे। यात्रा के दौरान उन्होंने देखा कि लोग गरीब हैं। गरीबी का कारण पूछने पर लोगों ने बताया कि हमारे यहां तीन चीजें हैं—शराब, सिगरेट और सिनेमा। इन तीनों के कारण हमारी गरीबी दूर नहीं होती। समाज में मनोरंजन चलता है। मनोरंजन के लिए पैसा भी लगता है। गरीब आदमी इन चीजों में पड़ जाता है फिर गरीबी दूर कैसे हो? कमाई भी सीमित हो और उसमें भी इन व्यसनों में पैसों का व्यय हो जाता है तो गरीबी से मुक्ति मिले भी तो कैसे? गरीबी तो एक अलग चीज है, मुख्य बात है कि आदमी का जीवन अच्छा कैसे बने? जीवन को अच्छा बनाने के लिए भी व्यसनमुक्त होना आवश्यक है। साधु मद्य आदि का नशा न भी करे, किन्तु वह ममता और मोह के नशे की गिरफ्त में आ सकता है।

एक संन्यासी कुटिया में रहता था। एक दिन कोई मित्र उनसे मिलने के लिए आ गया। बात-बात में संन्यासी ने कहा—देखो, मेरी कुटिया कितनी सुन्दर है। इतना पैसा अमुक भक्त ने दिया था। इसका पत्थर कितना अच्छा है। वार्तालाप के दौरान उसने अनेक बार अपनी कुटिया की प्रशंसा की। मित्र ने कहा—महात्माजी! जब आप गृहस्थ थे, तब बार-बार अपनी हवेली की प्रशंसा किया करते थे। मकान तो अब छोड़ दिया, कुटिया में रहने लग गए। किन्तु यह बाहर का आकर्षण अभी तक आपका पूरा छूटा नहीं है। हवेली की जगह आपका ममता का भाव कुटिया के साथ जुड़ गया। पैसे के प्रति, परिवार के प्रति, मोह का होना गृहस्थ के लिए सामान्य बात है। चूंकि गृहस्थ का जीवन मोह से काफी युक्त होता है। हालांकि वहां भी साधना का लक्ष्य हो तो निर्मोहता का अभ्यास किया जा सकता है। धन आदि के प्रति अतिमोह होता है तो वह लौकिक संदर्भों में भी अच्छा नहीं होता और धार्मिक संदर्भ में भी अच्छा नहीं होता। आयारो में कहा गया है कि जो ममत्व की बुद्धि का त्याग करता है यानी दिमाग में जो ममत्व का भाव है, मूर्च्छा का भाव है, उसका जो त्याग कर देता है, वह व्यक्ति ममत्व का त्यागी होता है। किसी संत में ज्यादा मोह हो सकता है और किसी गृहस्थ में कम मोह भी हो सकता है। उत्तराध्ययन में कहा गया कि कुछ गृहस्थ भी इतने ऊंचे होते हैं कि वे कुछ कुछ भिक्षुओं से भी ज्यादा संयमी होते हैं। एक एक भिक्षु की अपेक्षा कुछ कुछ गृहस्थ संयम में उत्तर होते हैं, प्रकृष्ट होते हैं और वैसे सामान्यतया सभी गृहस्थों से साधु तो ऊपर होते ही हैं। गृहस्थ को भी उपदेश इसीलिए दिया जाता है कि उसका ज्ञान बढ़े और मोह की चेतना कम हो सके।

एक सेठ किसी संत के पास गया। संत को पता चला कि सेठ के मोह भाव ज्यादा है, आसक्ति ज्यादा है। इसका मन परिवार में, पैसे में और मकान में लगा रहता है। इसलिए इसे उपदेश देना चाहिए। उपदेश भी इस तरीके से दूं कि सेठ मेरी बात को अच्छी तरह समझ जाए। बात कहने के अनेक तरीके होते हैं। बात सीधी भी कही जा सकती है और घुमा-फिराकर भी कही जा सकती है। जिस तरीके से सामने वाले पर असर हो, वह तरीका काम में लेना चाहिए। संत भिक्षा के लिए घरों में जाते हैं। भिक्षा भी जन-सम्पर्क का एक माध्यम है। भिक्षा के माध्यम से अनेक-अनेक परिवारों से सम्पर्क होता है और उन्हें प्रेरणा भी प्रदान की जा सकती है।

संत भिक्षा के लिए गए और सेठ से बात करने लगे। बात-बात में संत ने कहा—सेठ साहब! एक छोटा-सा काम है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

सेठ—फरमाइए महाराज! जो भी सेवा होगी, मैं करने का प्रयास करूंगा।

संत—काम इतना-सा है कि मेरे पास एक सूई है। उसे मैं आपके पास रखना चाहता हूं। वह सूई अगले जन्म में मुझे वापस लौटा देना।

सेठ मुस्कुराया और बोला—महाराज! आप क्या बात कह रहे हैं। अगले जन्म में क्या सूई मेरे साथ चलेगी?

संत—सेठ साहब! सूई साथ में नहीं चलेगी तो क्या इतना पैसा आपके साथ चलेगा? इतने मकान आपके साथ चलेंगे? इतनी कारें आपके साथ चलेंगी? फिर इतना मोह क्यों?

सेठ—महाराज! मैं समझ गया। आप मुझे अनासक्ति का संदेश देना चाहते हैं।

संत—आप जैसे कुछ लोग ऐसे होते हैं जो इस तरह का जीवन जीते हैं मानो कि वे अमर बनकर दुनिया में आए हैं। उन्हें कभी आगे जाना ही नहीं है, किन्तु अमर तो इस दुनिया में कोई नहीं है। फिर आप इतने मोह में क्यों फंसे हुए हैं?

सेठ—महात्मन्! मैं आपके उपदेश को शिरोधार्य करता हूं और अब मैं प्रयास करूंगा कि मेरे भीतर मोह की चेतना और परिग्रह की आसक्ति कम हो।

जैन वाङ्मय में श्रावक के तीन मनोरथ बताए गए हैं। उनमें पहला मनोरथ है—कब मैं अल्पमूल्य एवं बहुमूल्य परिग्रह का प्रत्याख्यान करूंगा। श्रावक चिन्तन करता रहे कि कब मेरा परिग्रह कम या दूर हो। मैं अपरिग्रह की साधना कर सकूं।

धम्मपद में बताया गया कि अप्रमाद और जागरूकता में रहो। तुम कामवासना में मत फंसो। क्योंकि जहां भोग की बहुलता होती है वहां भी प्रमाद है। कई बार आदमी भोग भोगने की इच्छा भी रखता है, परन्तु परिस्थितियां ऐसी होती हैं कि वह भोग भी अच्छी तरह भोग नहीं सकता। आदमी काम भावना से भी उपरत होने का प्रयास करे। गार्हस्थ्य जीवन का एक सीमा व्रत है—स्वदार संतोष और स्वपति संतोष। इस सीमा का अतिक्रमण न हो। साधु के लिए तो पूर्ण शील का विधान है, किन्तु गृहस्थ के लिए एक न्यूनतम सीमा का विधान प्राप्त होता है।

गृहस्थ और साधु सब अप्रमाद की दिशा में प्रस्थान करें। सबका कल्याण होगा।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

२१

प्रमाद-मुक्ति : अप्रमाद से

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में बताया गया है—

पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो।
पञ्चापासादमारुय्ह असोको सोकिनिं पजं।
पब्बतट्ठो'व भूमट्ठे धीरो बाले अवेक्खति।।२/८।।

जब पण्डित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है, तब वह शोक रहित हो, शोकाकुल प्रजा को, प्रज्ञा रूपी प्रासाद पर चढ़कर जैसे पर्वत पर खड़ा पुरुष भूमि पर स्थित वस्तु को देखता है, वैसे ही धीर पुरुष अज्ञानियों को देखता है।

अप्रमाद के द्वारा प्रमाद को हटाया जा सकता है। यह प्रतिपक्ष भावना का एक सिद्धान्त है। प्रतिपक्ष का प्रयोग करने से पक्ष का नाश हो सकता है। दसवेआलियं में कहा गया—

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं चज्जवभावेण, लोभं सतोसओ जिणे।।८/३८।।

उपशम से क्रोध का हनन करे, मृदुता से मान को जीते, ऋजुभाव से माया को और संतोष से लोभ को जीते।

इसी प्रकार अप्रमाद के अभ्यास के द्वारा, जागरूकता के अभ्यास के द्वारा प्रमाद को दूर किया जा सकता है। आदमी का संकल्प पुष्ट हो जाए कि मुझे अप्रमाद का अभ्यास करना है तो कोई बहुत कठिन बात नहीं है। अप्रमाद की साधना के लिए आत्मस्थ रहना आवश्यक है। परमपूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने एक सूत्र दिया था—रहो भीतर जीओ बाहर। दुनिया में जीना पड़ता है। व्यवहार भी निभाना पड़ता है, परन्तु भीतर आत्मा में रहो और अपेक्षित दुनिया का व्यवहार भी चलाते रहो। उससे दुनिया का व्यवहार भी चलेगा और खुद की साधना भी आगे बढ़ सकेगी।

किसी संत के पास एक युवक गया और बोला—महाराज! मेरे कुछ प्रश्न हैं। उनका आपसे जवाब चाहता हूं, किन्तु मैं कुछ जल्दी में हूं। इसलिए आप जल्दी उत्तर देने की कृपा करें।

संत—तुम जल्दी में हो तो कोई एक मुख्य सवाल पूछ लो। मैं उसका जवाब दे दूंगा।

युवक—मुख्य सवाल तो एक ही है कि धर्म क्या है?

संत—पहले मुझे यह बताओ कि तुम कहां रहते हो?

युवक—महाराज! मैं तो दिल्ली में रहा करता हूं।

संत—तुम्हारा एड्रेस क्या है?

युवक ने अपना कार्ड संत के हाथ में थमा दिया।

संत—यह स्थायी पता है ना, हमेशा तुम यहीं मिलते हो ना?

युवक—नहीं महाराज! मैं मंगलवार को तो प्रायः राजस्थान आ जाता हूं।

संत—राजस्थान का स्थायी पता दे दो।

युवक—ऐसा कोई निश्चित क्रम नहीं है।

इस प्रकार संत ने कई बार पूछ लिया कि तुम कहां रहते हो? युवक झुंझला गया। उसने अपनी छाती पर हाथ रखते हुए कहा—मैं यहां रहता हूं।

संत—बस, मेरा जवाब हो गया। यहां रहना यानी आत्मा में रहना धर्म है और दुनियादारी में रहना पाप है। अपने आपमें रहना अप्रमाद का अभ्यास है।

जो साधक अप्रमाद के द्वारा प्रमाद को नष्ट कर देता है वह प्रज्ञा के प्रासाद पर खड़ा हो जाता है। जैसे कोई व्यक्ति ऊंची इमारत पर खड़ा होकर नीचे देखता है तो उसे धरती पर खड़े-बैठे लोग दिखाई दे देते हैं। क्योंकि वह ऊंचा है। वैसे ही अप्रमाद की भूमिका पर जो व्यक्ति आरूढ़ हो जाता है वह प्रमाद में रहने वाले व्यक्तियों को देखता है कि इस दुनिया के लोग किस प्रकार

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

का जीवन जी रहे हैं। दुनिया को देखना कोई आवश्यक नहीं, वह तो स्वाभाविक चीज है यानी जब सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है, तब पूरी दुनिया उसके सामने हस्तामलकवत् अर्थात् हाथ में आंवला जैसे साफ दिखता है वैसे उसे पूरी दुनिया दिखाई देने लग जाती है। आदमी के पास बुद्धि है। वह बुद्धि का प्रयोग प्रमाद में न करके अप्रमाद में करने का प्रयास करे तब तो बुद्धि की भी सार्थकता होगी। आदमी अपनी बुद्धि को बेकार की बातों में प्रयुक्त करता है तो वह प्रमाद है। अप्रमाद का साधक किंचित् भी समय प्रमाद या अर्थहीन बातों में नहीं बिताए, यह अपेक्षा होती है।

एक छोटा-सा लड़का मां के पास गया और बोला—मां! आज स्कूल में टीचर ने मुझे पीटा।

मां—क्यों पीटा?

लड़का—मैंने टीचर को मुर्गी कह दिया। इसलिए उसने मुझे पीटा।

मां—तुमने उसको मुर्गी क्यों कहा?

लड़का—उसने मेरी कॉपी में अण्डा दे दिया, तब मैंने उसे मुर्गी कह दिया।

धम्मपदकार ने कहा कि तुम्हें अप्रमाद का अभ्यास करना है। वह अभ्यास तुम्हारे प्रमाद-विनाशन में सहायक बनेगा। केवल बच्चों की बात नहीं, बच्चे भी प्रमाद कर लेते हैं और बड़े-बड़े लोग भी प्रमाद में चले जाते हैं। प्रमाद के तरीके कुछ अलग-अलग हो सकते हैं। बच्चे अपने ढंग के प्रमाद करते हैं और बड़े अपने ढंग के प्रमाद करते हैं। खैर, किसी भी तरह का प्रमाद हो, प्रमाद मात्र साधना में विकास करने के लिए निवारणीय होता है। चाहे एक व्यापार करने वाला आदमी किसी का शोषण करता है तो वह भी प्रमाद है। उद्योगपति मजदूर से सहयोग लेता है और मजदूर को उद्योगपति से वेतन मिलता है, परन्तु यहां शोषण भी किया जा सकता है और पोषण भी किया जा सकता है। जैसे एक मजदूर वेतन पूरा प्राप्त करता है और काम करने से जी चुराता है या काम कम करता है तो वह मजदूर उद्योगपति का या उद्योग का शोषण करता है। एक उद्योगपति कर्मचारी से काम पूरा लेता है और उसे वेतन देने में कंजूसी करता है या पूरा नहीं देता है तो उद्योगपति के द्वारा मजदूर का शोषण किया जाता है। इस प्रकार परस्पर शोषण होता है। यदि उद्योगपति पूरा वेतन दे रहा है और मजदूर पूरा काम कर रहा है तो दोनों एक-दूसरे का पोषण करते हैं। जहां किसी का शोषण होता है, वहां वह प्रमाद है, पाप है। केवल मैं उद्योगपति को भी दोषारोपित नहीं करना चहता। उद्योगपति भी प्रमाद में जा सकता है और मजदूर भी प्रमाद में जा सकता है।

केवल सास को आरोपित नहीं करना चाहिए और केवल बहू को भी आरोपित नहीं करना चाहिए। दोनों ओर से प्रमाद और गलतियां हो सकती हैं। निष्पक्ष भाव से चिन्तन किया जाए, दोनों ओर से सौहार्द का वातावरण हो तो घर-परिवार का माहौल अच्छा रह सकता है। जहां गुरु-शिष्य परम्परा है, वहां भी दोनों एक-दूसरे के प्रति जागरूक हैं तो संबंध अच्छा बना रह सकता है। जागरूक होने का मतलब है वे प्रमाद से कुछ बचे हुए हैं और अजागरूक हैं तो प्रमाद उनमें छाया हुआ है, यह अनुमान लगाया जा सकता है। एक गरीब व्यक्ति के द्वारा भी प्रमाद हो सकता है और एक अमीर व्यक्ति के द्वारा भी प्रमाद हो सकता है। आचारांगभाष्य में कहा गया है कि अपरिग्रह की बात गरीब के लिए भी है और अमीर के लिए भी है। क्योंकि मूर्च्छा धन न होने पर भी हो सकती है और धन के होने पर भी हो सकती है। संस्कृत साहित्य में उल्लेख मिलता है कि एक गरीब आदमी ने कहा—हे दारिद्र्य! तुमने तो मुझे सिद्ध बना दिया। क्योंकि जो सिद्ध होता है वह सबको देखता है, सबको जानता है। मैं सबकी ओर देखता हूं कि कौन सेठ आ रहा है और कौन मुझे देगा, पर मुझे कोई नहीं देखता सब आगे चले जाते हैं। एक गरीब के मन में भी व्यथा होती है तो अमीर के मन में भी व्यथा होती है। उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया कि परिग्रह, पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं फिर उनकी रक्षा का भी कुछ तनाव हो जाता है। पैसे को कमाना भी बड़ा कठिन होता है और कमाने के बाद उसकी रक्षा का भी बड़ा प्रश्न हो जाता है। गरीब के लिए कठिनाई होती है तो अमीर के लिए भी कठिनाई है। कभी-कभी तो गरीब की अपेक्षा अमीर के ज्यादा कठिनाई हो जाती है। पैसा प्राप्त होने के बाद कई बार मानसिक शांति चली जाती है। एक गृहस्थ पैसे को बिल्कुल छोड़ दे, यह तो संभव नहीं लगता, किंतु अर्थ के आने पर भी शांति भंग न हो और स्वास्थ्य खराब न हो,

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

यह अपेक्षा रहती है। वह अर्थ किस काम का जो आदमी की शांति और स्वास्थ्य दोनों को नष्ट कर दे।

उत्तराध्ययन में एक जगह यह भी आता है 'छंदं निरोहेण उवेइ मोक्खं' अर्थात् आदमी स्वच्छन्दता का निरोध करके मोक्ष को प्राप्त हो सकता है। स्वच्छन्दता प्रमाद है और स्वच्छन्दता का निरोध अप्रमाद है। जहां-जहां स्वच्छन्दता है, असंयम है, इसका मतलब आदमी प्रमाद में फंसा हुआ है। संगठनों में भी स्वच्छन्दता पर रोक लगाने का प्रयास किया जाता है। क्योंकि जहां अनेक व्यक्ति साथ में रहकर काम करते हैं, वे सब स्वच्छन्दाचारी हो जाएं तो कार्य करने में कठिनाई हो सकती है। यदि सब अनुशासन में चलते हैं, किसी बड़े की बात मानकर चलते हैं, एक नेतृत्व में चलते हैं तो वहां कार्य भी ज्यादा अच्छा हो सकता है।

धम्मपदकार ने एक सारपूर्ण बात बताई कि अप्रमाद के द्वारा प्रमाद को हटाओ। फिर तुम प्रज्ञा के प्रासाद पर खड़े होकर प्रमादी दुनिया को देख पाओगे यानी प्रमाद से तुम उपरत हो सकोगे।

हम धम्मपद और उत्तराध्ययन के उपदेशों पर यथासंभव मनन करें और अपने जीवन में प्रमाद को कम करने का और अप्रमाद की दिशा में आगे बढ़ने का अभ्यास करें।

२२

जहां जागरूकता : वहां वर्धमानता

इस दुनिया में प्रमाद में रहने वाले लोग भी मिलते हैं और अप्रमत्त मनुष्य भी मिलते हैं। अगर बहुलता की दृष्टि से देखा जाए तो पूर्ण अप्रमत्त और पूर्ण जागृत मनुष्य कम मिलेंगे, अपेक्षाकृत जो सुप्त और प्रमाद में रहने वाले लोग होते हैं। प्रश्न हुआ, फिर आदमी को क्या करना चाहिए? इस संदर्भ में बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया—

अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो।
अबलस्सं'व सीघस्सो हित्वा यति सुमेधसो।।२/९।।

प्रमादी लोगों में अप्रमादी तथा (अज्ञान की नींद में) सोये लोगों में (प्रज्ञा से) जागरणशील बुद्धिमान् उसी प्रकार आगे जाता है, जैसे तेज घोड़ा दुर्बल घोड़े से आगे हो जाता है।

जो प्रमादी मनुष्य हैं, उनके बीच में भी अप्रमत्त रहने का प्रयास करना चाहिए। काजल की कोठरी में जाकर भी बेदाग रहने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि सारी दुनिया अप्रमत्त हो जाए, यह तो असंभव है। जिसमें कुछ अप्रमाद की चेतना जागी है, वह प्रमादी लोगों के बीच में रहते हुए भी अप्रमाद में रहने का अभ्यास करे। जो लोग सोए हुए हैं, उनके बीच जागृत रहने का अभ्यास करना चाहिए। सोने और जागने की बात जैन वाङ्मय में भी मिलती है। जैन वाङ्मय का एक महत्त्वपूर्ण आगम है आयारो। उसमें कहा गया—'सुत्ता अमुणी सया, मुणिणो सया जागरंति (३/१)' अर्थात् जो अज्ञानी होते हैं वे सदा सोए हुए रहते हैं और जो ज्ञानी होते हैं, वे हमेशा जागते रहते हैं। सोना और

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

जागना अलग बात है। जिसके भीतर मूर्च्छा की नींद है, वह भाव निद्रा की अपेक्षा सोया हुआ है और जिसकी मूर्च्छा टूट गई, प्रमाद छूट गया, वह व्यक्ति भावतः जागृत होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी ऐसी ही बात आती है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्या जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।२/६९ ।।

सब प्राणियों के लिए जो रात है, संयमी उसमें जागता है। जिसमें अन्य प्राणी जागते हैं, उसमें मुनि सोया रहता है यानी विषय-भोगों में तो मुनि सोया रहता है और आत्मा में जागता है। आम आदमी विषय-भोगों में जागता है और आत्मा में सोया रहता है। भीतर से जागना, आत्मा का जागरण होना भावतः जागृति होती है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया—

सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी, न वीससे पंडिए आसुपण्णे।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारुण्डपक्खी व चरप्पमत्तो ।।४/६ ।।

आशुप्रज्ञ पंडित सोए हुए व्यक्तियों के बीच भी जागृत रहे। प्रमाद में विश्वास न करे। काल बड़ा घोर (क्रूर) होता है। शरीर दुर्बल है। इसलिए भारण्ड पक्षी की भांति अप्रमत्त होकर विचरण करे।

सोए हुए लोगों के बीच भी धार्मिक आदमी को जागृत करने का प्रयास करना चाहिए। सोए हुए लोगों के बीच में एक व्यक्ति भी जागरूक होता है तो वह अनेकों का भला कर सकता है।

प्राचीन काल की बात है। अनेक व्यक्तियों का एक बड़ा समूह व्यापार करने के लिए दूर देश जा रहा था। उस समय बस, ट्रेन या प्लेन जैसा कोई साधन नहीं था। लोग पादविहार के द्वारा या पशुओं की सवारी करके या कभी जहाज के द्वारा यात्रा करते थे। वे लोग पादविहार करके जा रहे थे। साथ में ऊंट थे। सामान ऊंटों पर रख देते और कई लोग ऊंटों पर बैठ भी जाते। ऊंट और पादविहार की यात्रा में वे रात्रि में कहीं ठहर जाते, विश्राम कर लेते और सुबह फिर आगे बढ़ जाते। यात्रा के दौरान कामरूप देश आया। उस देश में कई व्यक्ति तंत्र-मंत्र के ज्ञाता थे। वे तंत्र-मंत्र के द्वारा धनवान लोगों को लूट लेते थे। जाते समय तो उस समूह ने रास्ता पार कर दिया, आगे बढ़ गया, पकड़ में नहीं आया, किंतु जब व्यापार करके वापस लौटते समय कामरूप देश आया तो वहां के युवकों ने इनको लूटना चाहा। उन्होंने देखा कि ये सौ आदमी हैं और सौ ही ऊंट हैं। इतने बड़े समूह को लूटना भी तो कोई छोटी-मोटी बात नहीं होती। कोई बड़ा मंत्र-तंत्र का जानकार हो तभी लूटा जा सकता है। गांव में एक बूढ़ा आदमी था, जो मंत्र विद्या सिखाता था। पांच-सात युवक उस बूढ़े दादा के पास गए और बोले—दादा! आज एक बहुत बड़ा जत्था आया है। सौ ऊंट हैं और सौ आदमी हैं। बड़े समूह को लूटना हमारे बस की बात नहीं है। आप चलो और मंत्र का प्रयोग करो।

दादा ने कहा—मैंने जिन्दगी में बहुत पाप किए हैं। अब मैं तंत्र-मंत्र का प्रयोग करके किसी को लूटने का पाप करना नहीं चाहता। युवक बोले—दादा! हमारी ओर से यह अन्तिम प्रार्थना है, आगे फिर कभी नहीं कहेंगे। इस बार हमारी बात मान लो। आखिर दादा ने बात मान ली और जहां वह समूह ठहरा हुआ था, वहां उन पांच-सात युवकों के साथ पहुंचा। दादा ने उन लोगों से कहा—हमारे लिए बहुत खुशी की बात है कि इतना बड़ा एक यात्री संघ हमारे यहां आया है। हमारा फर्ज बनता है कि हम आपको भोजन कराएं। उन लोगों में एक मुखिया था। उसने कहा—हमने तो भोजन कर लिया। बूढ़े दादा ने कहा—खैर, अब एक-एक मूला हर व्यक्ति हमारे गांव की तरफ से ले लें और खा लें तो हम मान लेंगे कि हमारी ओर से आवभगत हो गई। वह मुखिया बोला—रात्रि के समय मूला खाना ठीक नहीं रहता। बूढ़े दादा ने कहा—साहब! गांव की मनुहार तो आपको माननी ही पड़ेगी। आखिर बहुत आग्रह किया तो उन लोगों ने मूला लेना स्वीकार कर लिया। दादा ने कहा—मैं अपने हाथ से एक-एक व्यक्ति को मूला दूंगा। सौ व्यक्तियों को दादा ने मन में मंत्र पाठ बोलते हुए अपने हाथ से मूला दिया। मूले देकर दादा और युवक चले गए। सब लोगों ने ज्योंहि मूला हाथ में लिया और मूला खा लिया। एक मुखिया ने जैसे-तैसे मूले को छिपा लिया, खाया नहीं। थोड़ी दूर आगे बढ़ने के बाद दादा ने सोचा कि एक बार परीक्षण कर लेना चाहिए कि मंत्रित मूलों का प्रभाव हुआ या नहीं। दादा फिर आया और देखा कि सारे लोग गहरी नींद में सोए हुए हैं।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org.

उसने युवकों से कहा—ये सब वश में हो गए हैं। मूल नाम से इनसे कुछ भी काम कराया जा सकता है। आज तो हम लेट हो गए हैं। कल सवेरे तुम लोग आना और सारे ऊंटों को व सारा माल ले लेना। फिर उनको जगाकर मूला नाम कहकर यहां से रवाना कर देना। ये यहां से चले जाएंगे। युवक सारी बात समझकर अपने-अपने घर चले गए। उधर मुखिया ने सोचा कि आज तो बड़ी मुश्किल हो गई। किन्तु उसने बात का रहस्य पकड़ लिया कि मूला नाम में सारा चमत्कार है। मूला नाम से इनसे कुछ भी काम कराया जा सकता है। वे लोग सोए हुए थे। मुखिया ने आवाज दी मूलोजी! मूला नाम सुनते ही सब खड़े हो गए। मुखिया—तैयार हो जाओ, ऊंटों पर बैठो और चलो यहां से।

जैसा आदेश मिला, वैसा ही किया। ऊंटों को तैयार किया, सामान तैयार किया और सब वहां से रवाना हो गए। निन्यानवे लोगों में अपनी कोई सुधबुध नहीं, कोई विवेक नहीं, अकेला मुखिया जागरूक था। जब आठ-दस कोस आगे बढ़ गया, सवेरा हो गया, तब कहा—मूलोजी! सब शौच के लिए जाओ। आदेश मिलते ही सब शौच के लिए चले गए। फिर कहा—सब कुल्ला करो। सबने कुल्ला कर लिया। फिर कहा—सब नाश्ता करो। सबने नाश्ता कर लिया। अब जैसे-तैसे रास्ता पार किया और अपनी राजधानी में पहुंचे। राजा के पास सारी व्यथा-कथा सुनाई। राजा ने कहा—अब यह समस्या तुम्हारी नहीं है। अब यह समस्या मेरी हो गई है, चूंकि मेरी प्रजा की समस्या है। मैं उपचार कराऊंगा। राजा ने अपने तंत्र-मंत्र विशेषज्ञों को बुलाया और उन सभी लोगों को मूलों के प्रभाव से मुक्त कराया।

एक मुखिया आदमी जागरूक हो तो वह अनेकों की सुरक्षा कर सकता है, अनेकों का बचाव कर सकता है। सामाजिक संगठनों और धार्मिक संगठनों आदि में भी मुखिया को जागरूक रहना चाहिए तभी वह औरों को जागरूक रख सकेगा। धम्मपदकार ने बहुत सुन्दर उदाहरण दे दिया कि जिस प्रकार तेज गति से चलने वाला घोड़ा मंदगति वाले घोड़ों को पीछे छोड़ देता है, उसी प्रकार जो जागरूक है वह सोए हुए व्यक्तियों से आगे निकल जाता है। जागृत रहने वाले की बुद्धि का भी विकास होता है। जो सोया रहता है, वह धन्य नहीं होता। जो जागृत रहता है वह व्यक्ति कृत-पुण्य हो जाता है। आदमी में जागरूकता का विकास हो। जागरूकता के विकास से मतलब है अप्रमाद का विकास हो, विवेक से आगे बढ़े। परमपूज्य आचार्यश्री तुलसी ने कहा था—'विवेगे धम्ममाहिए' अर्थात् विवेक ही धर्म है। जहां विवेक है, जागरूकता है, वहां धर्म का निवास होता है और जहां अविवेक है वहां फिर मूर्च्छा भी हो जाती है और अविवेक की स्थिति में नुकसान होने की संभावना भी रहती है, वहां प्रमाद भी हावी हो जाता है। इसलिए आदमी जागृत रहे। जागृत रहकर वह अपनी आत्मा का उद्धार कर सकता है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

२३

अप्रमाद बने कल्याणमित्र

आदमी के जीवन में अप्रमाद और प्रमाद बहुत महत्त्व रखता है। जब-जब आदमी प्रमाद में रहता है वह किसी अंश में पतन के गर्त में चला जाता है और जब-जब अप्रमाद में रहता है वह विकास के पथ पर अग्रसर होता है। आदमी दूसरों को मित्र बनाता है पर अप्रमाद को अपना मित्र बना लेना चाहिए और मित्र भी ऐसा अभिन्न बना लेना चाहिए कि मैं जहां भी रहूं अप्रमाद हमेशा मेरे साथ रहे। बाहर के मित्र तो हमेशा साथ न भी रहें, किन्तु अप्रमाद एक ऐसा मित्र है जिसे प्रायः साथ रखा जा सकता है। हालांकि अप्रमाद की अनेक भूमिकाएं हैं। साधु के लिए अप्रमाद की विशेष भूमिका है तो गार्हस्थ्य में भी कुछ अंशों में अप्रमाद हो सकता है। उसको भी जीवन का कल्याण मित्र बना लेना चाहिए। बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया—

अप्पमादेन मघवा देवानं सेट्ठतं गतो।
अप्पमादं पसंसन्ति पमादो गरहितो सदा।।२/१०।।

अप्रमाद (आलस्य रहित होने) के कारण इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना। सभी अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं और प्रमाद की सदा निन्दा होती है।

प्राकृत साहित्य में भी इन्द्र का उदाहरण दिया गया है। जैन वाङ्मय के दसवेआलियं सूत्र में जहां आचार्य की स्तुति की गई है वहां कहा गया—

जहा निसंते तवणच्चिमाली, पभासई केवलभारहं तु।
एवायरियो सुयसीलबुद्धिए विरायई सुरमज्झे व इंदो।।९/१/१४।।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

जैसे दिन में प्रदीप्त होता हुआ सूर्य सम्पूर्ण भारत (भरत क्षेत्र) को प्रकाशित करता है, वैसे ही श्रुत, शील और बुद्धि से सम्पन्न आचार्य विश्व को प्रकाशित करते हैं और जिस प्रकार देवताओं के बीच इन्द्र शोभित होता है, उसी प्रकार साधुओं के बीच आचार्य सुशोभित होते हैं।

जिस प्रकार अप्रमाद के अभ्यास के कारण इन्द्र देवों में श्रेष्ठता को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार आदमी भी अप्रमाद का अभ्यास करता है तो वह श्रेष्ठता को प्राप्त हो जाता है। अप्रमाद की प्रशंसा होती है और प्रमाद सदा गर्हित होता है। संसार में भलाई की प्रशंसा होती है और बुराई की निन्दा होती है। आदमी दूसरों का भला करेगा, कल्याण करेगा, उद्धार करेगा तो उसका भी भला होगा। वह दूसरों का बुरा करेगा तो उसका भी बुरा हो सकता है। अगर आदमी मूर्च्छा में है, विषयासक्त है, तो मानना चाहिए कि वह उस अवस्था में अप्रमाद से दूर और प्रमाद में रचापचा हुआ है। जिसका पदार्थों के प्रति अनाकर्षण है तो मानना चाहिए वह किसी रूप में अप्रमाद का अभ्यासी है।

आदमी के मन में संकल्प-विकल्प पैदा होते रहते हैं। यह ध्यान देना चाहिए कि दुःसंकल्प या खराब विचार मन में न आएं। कोई घटना घटती है और आदमी के मन में विकल्प आ जाता है। अगर आदमी का मन सध जाए तो फिर वह विकल्पों से अपना बचाव भी कर सकता है। पदार्थों को देखता है तो आकर्षण या विकर्षण हो जाता है। अप्रमाद का और पदार्थों के प्रति अमूर्च्छा का संबंध है। जैसे-जैसे विषयों के प्रति अनासक्ति होती है वैसे-वैसे उत्तम तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है। उत्तम तत्त्व की प्राप्ति और विषयों के प्रति अनाकर्षण, इन दोनों का मानो अन्योन्य संबंध होता है। जब आदमी सम्यक् ज्ञान की गहराई में जाता है, तो वह भी उसको साधना में आगे बढ़ाने के लिए एक आधारभूत तत्त्व होता है। ज्यों-ज्यों जिज्ञासा बढ़ती है, त्यों-त्यों सम्यक् ज्ञान के विकास का द्वार खुल जाता है। जिज्ञासा तो ज्ञान को पैदा करने वाली होती है। इसलिए आदमी को जिज्ञासा करनी चाहिए। अप्रमाद का साधक कार्य करता है, साधना करता है, परन्तु ख्याति की भावना नहीं रखता। एक मात्र आत्मा के शोधन के लिए वह साधना करता है। जीवन में कभी सुख मिलता है और कभी दुःख मिलता है, किन्तु अप्रमाद का साधक उनमें सम रहता है। अनुकूल वेदन पुण्य के योग से होता है और प्रतिकूल वेदन पाप के उदय से

होता है। हमारे जीवन में कभी पुण्य और कभी पाप की स्थितियां आ जाती हैं। अप्रमाद का साधक उन सब स्थितियों में सम रहने का अभ्यासी होता है। जितना संभव होता है वह दूसरों का कल्याण करता है, परन्तु कल्याण के साथ नाम की भावना नहीं रखता, मात्र अपने कर्तव्य के लिए या भलाई के लिए कार्य करता है। भलाई करके गिनाता रहे, इसका मतलब है अभी तक अप्रमाद की कमी है। अप्रमाद है—नेकी कर कुएं में डाल। भला करके कुएं में डाल दो। उसे वापस गिनाने का चिन्तन भी मत रखो। यह भी एक अप्रमाद की साधना का सहयोगी तत्त्व या अप्रमाद की ओर ले जाने वाला प्रतीकचिह्न होता है। प्रमाद और अप्रमाद का एक जोड़ा है। जीवन में कभी प्रमाद आ जाता है और कभी अप्रमाद आ जाता है। कभी निराशा का कुहासा आ धमकता है तो कभी आदमी आशावान भी बन जाता है। कभी व्यक्ति कुण्ठा में जाकर आत्महत्या तक की बात भी सोच लेता है। जैन रामायण का एक प्रसंग है। एक बार किसी त्यौंहार का प्रसंग था। महाराज दशरथ ने सभी रानियों के लिए मंगल कलश भेजे। अन्य सभी रानियों के पास मंगल कलश पहुंच गए, किन्तु कौशल्याजी के पास मंगल कलश नहीं पहुंचा। उन्होंने सोचा कि लगता है महाराज का मेरे प्रति कोई प्रेम भाव नहीं है। इसलिए मेरे अतिरिक्त सभी रानियों को मंगल कलश भेज दिए, पर मेरे लिए कुछ भी नहीं भेजा। जब मेरे पतिदेव का मेरे प्रति प्रेमभाव नहीं है फिर जीने में क्या लाभ है। ऐसा सोचकर कौशल्याजी अपने गले में फंदा डालकर आत्महत्या की तैयारी कर ही रही थीं कि अचानक दशरथजी वहां पहुंच गए। उन्होंने महारानी कौशल्या के गले से फंदा निकाला और पूछा—क्या बात हुई?

महारानी कौशल्या—आपको तो और रानियां प्यारी हैं। मेरे से आपको कोई मतलब नहीं है। आप मुझे याद भी नहीं करते। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आज त्यौंहार का दिन था। अन्य सभी रानियों के लिए तो आपने मंगल कलश भेजे, किन्तु मेरे लिए कुछ भी नहीं भेजा।

महाराज दशरथ—क्या बात करती हो? तुम तो सबसे बड़ी हो। मेरे मन में सबसे ज्यादा स्थान तुम्हारा ही है। मैंने और रानियों के लिए तो दासियों के साथ मंगल कलश भेजे, किन्तु तुम्हारे लिए तो स्पेशल खोजे के साथ मंगल कलश भेजा था। क्या अभी तक खोजा यहां नहीं पहुंचा? बात चल ही रही थी, इतने में खोजा पहुंचा और बोला—लो रानीजी, मंगल कलश।

महाराज दशरथ—भैया! इतनी देरी कैसे कर दी? मैंने सबसे पहले तुम्हारे साथ कलश भेजा था।

खोजा—महाराज! दासियां तो छोटी उम्र की हैं। वे तो तेजगति से चलकर आ गईं, किन्तु मैं तो बूढ़ा आदमी हूं। धीरे-धीरे खांसते-खांसते अब पहुंचा हूं। दशरथजी ने वह मंगल कलश अपने हाथ में लिया और कौशल्याजी का अभिषेक-सा कर दिया। अभिषेक क्या किया मानो उनकी मनोव्यथा को धो दिया। कौशल्याजी का मन वापस प्रफुल्लित हो गया।

आदमी के मन में कब कौनसा संकल्प-विकल्प जाग जाए कहना कठिन है। कुछ प्रतिकूलता आने पर अन्यथा विकल्प भी आ जाता है और अनुकूलता में प्रफुल्लता का विकल्प भी आ जाता है। आदमी अप्रमाद की साधना में आगे बढ़े। फिर ये स्थितियां ज्यादा प्रभावित नहीं कर सकेंगी। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहा गया कि अनुकूलता आ जाए, प्रिय स्थिति आ जाए तो ज्यादा हर्ष नहीं करना चाहिए और अप्रिय स्थिति आ जाए तो आदमी को उद्विग्न नहीं बनना चाहिए। हर स्थिति में उसे स्थिरबुद्धि रहना चाहिए। आदमी सोचे कि यह जीवन प्रमाद करने के लिए ही मिला है या इसमें अप्रमाद की साधना भी की जा सकती है। जीवन का मूल्य कितना है? आदमी मानव जीवन का सम्यक् मूल्यांकन करे। वैभव आदि का मूल्य ज्यादा नहीं होता, ज्यादा मूल्य मानव जीवन का है, मानवता का है और उसमें भी अप्रमाद का है।

धम्मपदकार ने कहा कि अप्रमाद की प्रशंसा होती है, प्रमाद सदा गर्हित होता है, निन्दित होता है। उत्तराध्ययन में भी विषय-भोगों से विरक्ति की बात बताई गई है। वहां विषय-भोगों को किंपाक फल के समान बताते हुए कहा गया—

जहा किंपागफलाणं, परिणामो न सुंदरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं परिणामो न सुंदरो।।१९/१७।।

© Jain Vishva Bharati
For Private & Personal Use Only nly
https://books.jvbharati.org

जिस प्रकार किंपाक-फल खाने का परिणाम सुंदर नहीं होता, उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुंदर नहीं होता।

जैसे किंपाक फल एक बार भले अच्छा लगे, किन्तु परिणाम खराब होता है। वैसे ही विषय-भोगों के प्रति होने वाली आसक्ति एक बार भले अच्छी लगे, किन्तु उसका भी परिणाम खराब आता है। इसलिए मनुष्य को परिणामदर्शी होना चाहिए। केवल तात्कालिकता में ही नहीं उलझना चाहिए। जिसमें परिणामदर्शिता होती है, मानना चाहिए उसमें अप्रमाद की साधना बढ़ी है। उसने अप्रमाद को समझा है और उसका अभ्यास भी किया है।

आदमी अप्रमाद की अवधारणा को समझने का और जीवन में प्रमाद से उपरत होने का अभ्यास करे। ज्यों-ज्यों अप्रमाद का विकास होगा, त्यों-त्यों आत्मा उन्नत बन जाएगी और मोक्ष की दिशा में अग्रसर हो जाएगी।

२४

अप्रमादी के पापकर्म नष्ट

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा।
संयोजनं अणुं थूलं डहं अग्गी'व गच्छति।।२/११।।

जो भिक्षु अप्रमाद में रत है या प्रमाद से भय खाने वाला है, वह आग की भांति छोटे-मोटे बंधनों को जलाते हुए जाता है।

अप्रमाद पापकर्मों को नष्ट करने के लिए अग्नि का काम करता है। आदमी के जीवन में यदाकदा प्रमाद होता रहता है। परन्तु ज्यों-ज्यों अप्रमाद का अध्यवसाय मजबूत बनता है, त्यों-त्यों आदमी प्रमाद से मुक्त होने लगता है और अप्रमाद की साधना पुष्ट हो जाती है। अप्रमाद के साधक के सामने चाहे उसकी कोई प्रशंसा करे या न करे, भले कोई उसकी निन्दा भी कर दे, परन्तु उस पर प्रशंसा-निन्दा का कोई असर नहीं होता। क्योंकि वह अपने आप में परम शक्तिशाली बन जाता है। अप्रमाद की साधना में बाधा है—बाह्य आकर्षण, नाम, ख्याति, प्रशंसा आदि की भावना। ये सब अप्रमाद की साधना में छिद्र करने वाले होते हैं। ख्याति आदि की भावना अप्रमाद की साधना को कमजोर बनाने वाली होती है। आदमी यह विचार करे कि मैं शाश्वत सुखों को पाने का इच्छुक हूं फिर क्षणभंगुर चीजों में क्यों उलझूं। मुझे अपनी आत्मा के प्रति जागरूक रहना चाहिए। आत्मा के प्रति जागरूकता है वह अप्रमाद है और बाह्य चीजों के प्रति जागरूकता है या किसी को धोखा देने के प्रति जागरूकता है वह प्रमाद है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

उत्तराध्ययन में भी प्रमाद-अप्रमाद की बात आती है। वहां कहा गया—

असंखयं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, कण्णू विहिंसा अजया गहिंति।।४/१।।

जीवन सांधा नहीं जा सकता। इसलिए प्रमाद मत करो। बुढ़ापा आने पर कोई शरण नहीं होता। प्रमादी, हिंसक और अविरत मनुष्य किसकी शरण लेंगे—यह विचार करो।

जो हिंसक हैं, असंयत हैं, वे जब मौत आएगी या पाप का उदय होगा तब किसकी शरण में जाएंगे। इसलिए आदमी को अप्रमाद का अभ्यास करना चाहिए। दोनों महान् ग्रन्थों में अध्यात्म का संदेश दिया गया है। उस अध्यात्म के संदेश को पकड़ने वाला चाहिए। बौद्धिक विकास होना भी अच्छा है, परन्तु बौद्धिक विकास ही सब कुछ नहीं है। अप्रमाद साथ में है तो बहुत अच्छी बात है। एक अल्पबुद्धि वाला व्यक्ति भी अप्रमाद की साधना में अग्रसर हो सकता है और बहुत बौद्धिक आदमी भी अप्रमाद की साधना में अग्रसर नहीं हो पाता। बुद्धि के साथ अप्रमाद का योग हो जाए फिर तो सोने में सुहागे वाली बात हो जाती है। अप्रमादयुक्त चित्त में बुद्धि की भी अच्छी स्फुरणा होती है। बुद्धि हर आदमी में नहीं होती है। कुछ लोगों में विशेष बुद्धि होती है, कुछ लोग सामान्य बुद्धि वाले होते हैं और कुछ लोग तो बुद्धि ब्रह्मचारी होते हैं। बुद्धि ब्रह्मचारी का मतलब है जिसमें बुद्धि का विकास ही नहीं हुआ। आदमी बुद्धि ब्रह्मचारी न बने, बुद्धिमान बने और केवल बुद्धि तक ही अटके नहीं, बुद्धि के आगे या बुद्धि के साथ अप्रमाद को जोड़े। बुद्धि है साथ में अप्रमाद या मोह का अल्पीकरण नहीं है तो वह मोह के योग वाली बुद्धि उत्पथ में ले जाने वाली बन सकती है। इसलिए आदमी अप्रमाद का विकास करे। उत्तराध्ययन और धम्मपद जैसे ग्रन्थों को पढ़ने से अध्यात्म की चेतना को विकसित करने वाले तत्त्वों का ज्ञान हो सकता है और उन तत्त्वों की साधना, आराधना करके व्यक्ति अपने आपको अप्रमाद की दिशा में आगे बढ़ा सकता है।

२५

प्रमादभीरू निर्वाण की ओर

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा।
अभब्बो परिहानाय निब्बानस्सेव सन्तिके।।२/१२।।

जो भिक्षु अप्रमाद में रत है या प्रमाद से भय खाने वाला है, उसका पतन होना सम्भव नहीं, वह तो निर्वाण के समीप पहुंचा हुआ है।

जो भिक्षु प्रमादभीरू है वह ऊर्ध्वारोहण करता है, निर्वाण के निकट पहुंच जाता है। अप्रमाद की साधना का सबसे बड़ा लाभ है कि आत्मा निर्वाण की ओर अग्रसर होती है। जिस लक्ष्य के साथ एक व्यक्ति भिक्षुत्व को स्वीकार करता है, साधुत्व को स्वीकार करता है, वह तब तक उस लक्ष्य की तरफ आगे बढ़ता रहे, जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए, यह काम्य है। भिक्षु निर्वाण के लक्ष्य से अभिनिष्क्रान्त हो और ऊर्ध्वारोहण न करे तो फिर उसके जीवन के सामने एक प्रश्नचिह्न खड़ा हो जाता है। क्योंकि उसने ध्रुव को अपना लक्ष्य बनाया है। जो ध्रुव यानी मोक्ष को छोड़कर अध्रुव पदार्थ में रमा रहता है, वह साधक पतन की ओर आगे बढ़ जाता है। आदमी के जीवन में आलस्य, प्रमाद बीच-बीच में कई बार आ जाता है, जो साधना में कुछ अवरोध भी पैदा करता है। आदमी सोचे कि जो अपनी शक्ति का गोपन करता है उसकी शुद्धि नहीं होती। शुद्धि उसकी होती है, जो सम्यक् पुरुषार्थ करता है, सही पराक्रम करता है। एक साधु के लिए तो अप्रमाद की साधना करणीय है ही, गार्हस्थ्य में जीने वाला व्यक्ति भी जितना संभव हो सके पापों से बचे। आदमी अकाय

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jainelibrary.org

की साधना, ईमानदारी की साधना, संयम की साधना करें। जब तक कषाय आश्रव रूप है, तब तक चिन्ता की बात नहीं है। जब कषाय अशुभयोग रूप में आ जाते हैं तो वहां विचारणीय बात हो जाती है। साधु जीवन में भी अशुभयोगों की संभावना रहती है। कभी चलने में प्रमाद, कभी बोलने में प्रमाद और कभी अन्य कोई प्रमाद हो जाता है। प्रमाद का होना बहुत संभव है, किंतु प्रमाद की शुद्धि का विशेष प्रयास करना चाहिए। यदि प्रमाद की शुद्धि का प्रयास न हो तो बड़ा खतरा रहता है। जहां प्रमाद का क्रम तो चले। किंतु पुनः शोधन न हो तो कचरा इकट्ठा होता चला जाएगा और एक दिन इतना हो जाएगा कि भीतर की चीज भी अदृश्य हो जाएगी।

आदमी के भीतर भय नाम का शत्रु बैठा रहता है। इसलिए मन में यह आ जाता है कि मेरे से प्रमाद तो हो गया, पर किसी को पता न चले। गुरुदेव तक मेरी बात न चली जाए। यदाकदा जब गुरु पूछते हैं तो बात को प्रकट करने में कहीं-कहीं माया का प्रयोग हो जाता है, दोष की शुद्धि सम्यक्तया नहीं होती है, यह स्थिति साधना के लिए मुझे ज्यादा खतरनाक लगती है। फिर शोधन कैसे होगा? गुरु तो एक प्रकार से भगवान तुल्य होते हैं। उनके सामने जो साधु दिल खोलकर, ऋजु बनकर अपनी आलोचना कर लेता है, मैं तो उसे महान व्यक्ति मानता हूं। पूछने पर तो स्पष्ट निवेदन करना ही चाहिए, बिना पूछे अपनी गलतियां बताना विशेष बात होती है। ऐसे व्यक्ति प्रमाद करने पर भी अच्छा शोधन कर लेते हैं। यदि प्रमाद की आलोचना नहीं होगी और दोष होते चले जाएंगे तो कहीं विराधकता की स्थिति भी बन सकती है। साधु को विराधक होने से डरना चाहिए। हमें कुछ मिले या न मिले, मात्र आराधक का पद मिल जाए तो समझना चाहिए हमें बहुत कुछ मिल गया।

मेरे मन में प्रश्न उठा कि साधु का मूल घर कौनसा है? समाधान मिला कि साधु का वर्तमान में मूल घर छठा गुणस्थान है। जहां वह लम्बे काल तक रहता है। सातवें गुणस्थान में तो कभी-कभी भले चला जाए, पर वहां रहने का मौका नहीं मिलता है। घूम-फिरकर आखिर आना छठे गुणस्थान में ही पड़ता है। साधु ही क्या, तीर्थंकर भी दीक्षा लेते हैं, तब कुछ समय के लिए सातवें गुणस्थान में विराजमान होते हैं, पर उन्हें भी छद्मस्थ काल में ज्यादा छठे गुणस्थान में ही रहना पड़ता है। श्रीमज्जयाचार्य ने लिखा है—

संजम लीधौ तिण समैं रे, आया सप्तम गुणठाण।
अंतरमुहूर्त तिहां रही रे, छठे बहुस्थिति जाण।।
पायो पद जिनराज नौं सुध।
ध्यान निर्मल ध्याय भलां जी कांई।।

तीर्थंकरों के गुणस्थान में और सामान्य साधु के गुणस्थान में बहुत अंतर होता है। तीर्थंकरों के छठे गुणस्थान में भी बहुत पवित्रता होती है, संयम की बहुत निर्मलता होती है। एक सामान्य साधु के छठे गुणस्थान में निर्मलता के विकास की ज्यादा अपेक्षा रह सकती है। छठे गुणस्थान में लम्बे काल तक रहना और दोष सेवन न होना काफी अंशों में असंभव जैसी बात लगती है। क्योंकि कषाय आश्रव और प्रमाद आश्रव का पाप तो चालू रहता ही है। अशुभयोग आश्रव का सेवन भी यदा-कदा दुर्बलता वश हो ही जाता है। साधु के लिए यह सावधानी रखने की अपेक्षा होती है कि वह कम से कम अशुभयोग आश्रव से बचता रहे। भीतर में तो कषाय हैं, वे कषाय बाहर योग रूप में ज्यादा आते रहेंगे तो संयम की निर्मलता में कमी आती रहेगी। कषाय से जब आदमी पराभूत हो जाता है, तब अशुभयोग में प्रवृत्त हो जाता है।

गृहस्थ भी सोचे कि मैं जितना संभव हो प्रमाद व पाप से बचूं और अपनी जीवनशैली को अच्छी बनाए रखूं। श्रावक के बारहव्रत अगर जीवन में आ गए हैं तो मानना चाहिए कि जीवन जीने की अच्छी शैली प्राप्त हो गई है। समता की साधना, अनासक्ति की साधना पुष्ट हो गई है तो मानना चाहिए कुछ अंशों में पापों से मुक्ति मिल गई है और धर्मात्मा का जीवन प्राप्त हो गया है।

धम्मपदकार ने ठीक कहा कि जो साधक अप्रमाद में रत रहता है, वह व्यक्ति अप्रमाद की साधना में तो आगे बढ़ता ही है, वह निर्वाण के निकट भी चला जाता है और अपनी आत्मा को परमशान्ति में स्थापित करने में सक्षम हो जाता है। अप्रमाद की साधना के लिए मन पर कंट्रोल करना आवश्यक है। अगर मन पर कंट्रोल नहीं है तो फिर प्रमाद आता रहता है और अपना प्रभाव भी चेतना पर डाल देता है। इसलिए साधु अपने मन का संयम करे, मन का

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

निग्रह करने का अभ्यास करे। ध्यान की साधना के द्वारा मन का निग्रह किया जा सकता है। विषय-भोगों में आसक्ति रखना, नशा करना, आलस्य करना, अतिनिद्रा लेना आदि प्रमादों से बचे और मन को अध्यात्म में लगाने का प्रयास करे।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया—

न कामभोगा समयं उवेंति, न यावि भोगा विगइं उवेंति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ।।३२/१०१।।

काम-भोग समता के हेतु भी नहीं होते और विकार के हेतु भी नहीं होते। जो पुरुष उनके प्रति द्वेष या राग करता है, वह तद्विषयक मोह के कारण विकार को प्राप्त होता है।

आदमी अप्रमाद की साधना का अभ्यास करे। जीवन में अप्रमाद की साधना पुष्ट होने पर कल्याण हो सकता है।

२६

चित्त की सुरक्षा करें

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रंथ धम्मपद में कहा गया है—

सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थकाम-निपातिनं।
चित्तं रक्खेय्य मेधावी चित्तं गुत्तं सुखावहं।।३/४।।

जिसे समझना आसान नहीं, जो अत्यन्त चालाक है, जो जहां चाहे झट चला जाता है—ऐसे चित्त की बुद्धिमान पुरुष रक्षा करे। सुरक्षित चित्त सुख-दायक होता है।

सामान्यतया चित्त और मन को एकार्थक माना जाता है। किसी कवि ने मन को लोभी, लालची, चंचल और चोर बताते हुए कह दिया कि मन के वश में मत रहो। क्योंकि मन तो पलक-पलक में बदलता है। यह मन का एक अंधेर पक्ष है। किसी वस्तु अथवा किसी घटना का अंधेर पक्ष भी हो सकता है और उसका उजला पक्ष भी हो सकता है। हम अंधेर पक्ष को भी समझें और उजले पक्ष को भी समझें। एक भक्त ने अपने धर्मगुरु के अनेक अवगुण बताए। अन्त में उसने कहा—अब तक मैंने जो कहा वह मेरे धर्मगुरु का अंधेर पक्ष था, परन्तु उनका जो उजला पक्ष है, वह अपने आपमें अति निर्मल है। मैंने जो अभी अंधेर पक्ष बताया है, वह भी हम जितने भी यहां बैठे हैं, उन सबसे उनका उजला पक्ष है। चित्त और मन का अंधेर पक्ष भी है तो उसका उजला पक्ष भी है। मन के द्वारा कितनी सुन्दर कल्पना की जा सकती है। मन के द्वारा कितनी अच्छी योजना बनाई जा सकती है और मन के द्वारा कितना ज्ञान विकसित हो सकता है। आदमी अंधेर पक्ष को कम करे और उजले पक्ष

© Jain Vishva Bharati
For Private & Personal Use Only
https://books.jvbharati.org

को पुष्ट करने का प्रयास करें। दशवैकालिक सूत्र की दूसरी चूलिका में कहा गया—

अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो, सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं।
अरक्खिओ जाइपहं उवेइ, सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ।।१६।।

सब इन्द्रियों को सुसमाहित कर आत्मा की सतत रक्षा करनी चाहिए। अरक्षित आत्मा जाति-पथ (जन्म-मरण) को प्राप्त होता है और सुरक्षित आत्मा सब दुःखों से मुक्त हो जाता है।

आत्मा की रक्षा करने के लिए पहले उसका सम्यक् ज्ञान होना आवश्यक है कि आत्मा की रक्षा कैसे करें, किस रूप में करें? पहले सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन प्राप्त हो तो फिर साधना की बात मजबूत हो सकती है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान नहीं है तो वह रक्षा करने की बात भी कैसे सोचेगा, चित्त के दमन की बात कैसे सोचेगा? इसलिए दृष्टिकोण कैसा है? पहले इस पर ध्यान देने की अपेक्षा है।

आदमी की दृष्टि आत्मा पर है या नहीं? अगर आत्मा पर दृष्टि टिक गई है, आत्मा का कुछ ज्ञान हो गया है, कषाय मंद हो गया है तो मानना चाहिए सम्यक् दृष्टि प्राप्त है, सम्यक् ज्ञान प्राप्त है और अगर आत्मा का कुछ भी ज्ञान नहीं है, मात्र भौतिक पदार्थों पर दृष्टि टिकी हुई है तो मानना चाहिए अभी तक सम्यक् दृष्टि में कमी है या सम्यक् दृष्टि की प्राप्ति हुई नहीं है। धर्म है क्या? आत्मा की शुद्धि ही तो धर्म है।

परमपूज्य गुरुदेव तुलसी महाराष्ट्र की यात्रा के दौरान सतारा शहर में पधारे। वहां गुरुदेव का प्रवचन हुआ। एक कम्युनिष्ट आदमी था। वह खड़ा हुआ और बोला। उसके बोलने का भाव यह था कि मैं किसी धर्म को नहीं मानता। मैं साधु-महात्माओं को नहीं मानता। उनको नमस्कार नहीं करता। आज आचार्यजी ने जो धर्म की व्याख्या की है उसके अनुसार तो मैं भी धार्मिक हूं और आज मैं आचार्यजी को प्रणाम करता हूं। कहने का तात्पर्य है कि यह सम्यक् बोध हो जाए कि धर्म कल्याणकारी है और उसके द्वारा आत्मा की शुद्धि होती है, फिर सम्यक् आचार का पालन किया जाए तो वह बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है।

एक उपासनात्मक धर्म है और एक आचरणात्मक धर्म है। दोनों का अपना-अपना महत्त्व है। दोनों में एक का चुनाव करना हो तो अपनी-अपनी इच्छा से किया जा सकता है। मुझे चुनाव करना पड़े तो मैं शुद्ध आचार वाले धर्म को प्राथमिकता देना चाहूंगा, उपासना वाले धर्म को दो नम्बर का स्थान देना चाहूंगा। हमारे यहां अहिंसा प्रशिक्षण का भी एक उपक्रम चलता है। जो गरीब हैं, दुःखी हैं, उनको पैसा तो चाहिए, पर केवल पैसा ही नहीं, उनको धर्म भी चाहिए, उनको नशामुक्ति भी चाहिए, उनको जीवन जीने का तरीका भी आना चाहिए, उनमें नैतिकता भी आनी चाहिए। अहिंसा प्रशिक्षण में अहिंसा के सिद्धान्त की बात भी निर्धारित की हुई है, इतिहास की बात भी है और अहिंसक जीवनशैली की बात, हृदय परिवर्तन की बात और फिर शुद्ध आजीविका और आजीविका प्रशिक्षण की बात बताई जाती है। ताकि एक गरीब आदमी भी धर्म से जुड़े। हालांकि भूखे को रोटी भी चाहिए, किन्तु साथ में धर्म की आस्था भी होनी चाहिए। केवल रोटी है, धर्म के प्रति आस्था नहीं है तो बहुत बड़ी कमी है। दोनों का योग है तो गार्हस्थ्य की दृष्टि से परिपूर्णता हो जाती है।

धम्मपदकार ने कहा कि जो चित्त समझने में बड़ा कठिन है, उसका दमन करने का अभ्यास करो और दमन करने की विधि संयम और तपस्या है। वह हाथ में आ जाती है तो चित्त का दमन किया जा सकता है। जैन परम्परा में आचार्य मंगु का प्रसंग आता है। वे कुछ सुविधावादी बन गए। खाने-पीने में रस लेने लग गए। हालांकि साधु को जीभ के वशीभूत नहीं होना चाहिए, जिह्वा पर कन्ट्रोल रखना चाहिए, पर वे जिह्वा के वशीभूत हो गए। वे कालधर्म को प्राप्त हुए तो बहुत ऊंची गति में नहीं गए, यक्ष जैसी छोटी देवगति में जाकर पैदा हो गए। एक दिन जहां उनके शिष्य प्रातः शौच के लिए जाते, उस रास्ते में आकर खड़े हो गए और जीभ को बाहर निकालते हुए शिष्यों से कहा— देखो, मैं तुम्हारा गुरु हूं, किन्तु मैं जीभ के वश में हो गया था। इसलिए नीची देवगति में चला गया। तुम लोग ध्यान रखना, जीभ पर संयम

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

रखना। चित्त का दमन नहीं होता है तो हमारी अगली गति पर भी असर आ जाता है। इसलिए आदमी को मन और चित्त का दमन करने का अभ्यास करना चाहिए।

हमारी आत्मा सोने के समान उज्ज्वल चीज है, परन्तु सोने पर भी कालिख आ सकती है। सोने की विशुद्धि और श्यामिका अग्नि के माध्यम से अलग-अलग हो सकती है। सोने का अस्तित्व अलग है, मिट्टी का अस्तित्व अलग है। जैसे मिट्टी से मिला हुआ सोना निर्धारित प्रक्रिया से शुद्ध रूप में लाया जा सकता है। वैसे ही हमारे चित्त का भी संयम और तपस्या की अग्नि के द्वारा शुद्ध रूप सामने लाया जा सकता है। जब चित्त निर्मल बन जाता है तो फिर हमें एक बहुत बड़ी उपलब्धि हो जाती है। चित्त की निर्मलता के लिए ऋजुतापूर्ण साधना अपेक्षित है, नाहर भगत जैसी साधना नहीं।

आचार्य भिक्षु के साहित्य में एक कथा आती है। एक बूढ़ा शेर था। उसने हाथ में एक माला ले ली। पशुओं ने जब देखा कि शेर ने माला जपना शुरू कर दिया तो उन्होंने दूर से ही पूछा—राजन्! क्या बात है, यह माला कब से ले ली? शेर बोला—भाई! बूढ़ा हो गया हूं। अब मैंने जीवों का मारना बन्द कर दिया है। अब तो भगवान का नाम लेता हूं ताकि अगला जन्म मेरा अच्छा हो सके। पशुओं ने सोचा, अब तो शेर अहिंसक बन गया है। अब इसके निकट जाएं तो कोई दिक्कत की बात नहीं है। एक दो पशु उसको भगत मानकर उसके निकट चले गए। वे ज्योंहि निकट गए, शेर उनको मारकर खा गया। यह नाहर भगत मात्र दिखाने का भगत बन गया, भीतर में तो हिंसा की भावना थी। ऐसे कुछ लोग धार्मिकता का दिखावा करते हैं, परन्तु धार्मिकता उनके जीवन में होती नहीं है। इसलिए चित्त का दमन करना है तो शुद्ध नीति के साथ, शुद्ध लक्ष्य के साथ उसका दमन करने का प्रयास करना चाहिए। एक साधु के लिए अपेक्षित है कि वह चित्त के प्रति जागरूक रहे। एक सीमा तक एक श्रावक भी चित्त का ध्यान रखे। एक सामान्य आदमी भी चित्त की रक्षा करता है तो उसका यह जीवन भी सुखी होता है और उसकी अगली गति भी अच्छी होने की संभावना बनती है। कोई गार्हस्थ्य में है तो गार्हस्थ्य के काम में ईमानदारी रखे। वह लेन-देन व्यवसाय, व्यवहार में अपनी नीतिमत्ता रखे, नैतिकता रखे। नैतिकता की रक्षा करना एक प्रकार से चित्त की रक्षा करना होता है। जो लोग नैतिकता के साथ व्यापार करते हैं उनकी आत्मा की निर्मलता में भी वह सहायक बनती है, साथ में समाज में उनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ती है। आदमी के जीवन में संयम आए, जीवन में नैतिकता आए, उसका अभ्यास बराबर चलता रहता है तो चित्त की निर्मलता का रक्षण और विकास हो सकता है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

२७

जागृत पुरुष को भय नहीं

बौद्ध साहित्य के महान् ग्रन्थ धम्मपद में कहा गया है—

अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो।
पुञ्ञपापपहीणस्स नत्थि जागरतो भयं।।३/७।।

जिसके चित्त में राग नहीं, जिसका चित्त द्वेष से रहित है, जो पाप-पुण्य विहीन है, उस जागृत पुरुष को भय नहीं।

जैन तत्त्वविद्या के अनुसार विचार किया जाए तो यह भूमिका सिद्धों की होती है, जहां न राग है न द्वेष है। हालांकि राग और द्वेष तो मनुष्य जीवन में ही समाप्त हो सकते हैं, किन्तु जहां न पुण्य है न पाप है, यह स्थिति तो सिद्ध पुरुषों में ही हो सकती है। जब तक देहधारी प्राणी है तब तक पाप न भी रहे, पर पुण्य तो रहेगा ही। दोनों से मुक्त अवस्था सिद्धावस्था होती है। जहां तक अभय की बात है वह पहले भी प्राप्त हो सकती है। इस देहधारी अवस्था में भी आदमी अभय का सिद्ध साधक बन सकता है। प्रेक्षाध्यान की साधना पद्धति में एक प्रयोग है अनुप्रेक्षा का। अनुप्रेक्षा के विभिन्न प्रयोगों में एक प्रयोग है अभय की अनुप्रेक्षा। उसका उद्देश्य है अभय की चेतना का विकास करना। अभय की चेतना को विकसित करने के लिए मैत्री भाव का विकास भी आवश्यक है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया कि व्यक्ति मैत्री भाव का उत्पादन करके निर्भय बन जाता है। जहां राग और द्वेष है वहां अभय का भाव होना कठिन है लेकिन जहां राग-द्वेष का अभाव है वहां मैत्री भाव और अभय का भाव हो सकता है। व्यक्ति जानवर, अंधेरे और भूत-प्रेत की बातें सुनकर भी डर जाता है। पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री महाप्रज्ञजी जब छोटे संत थे, तब किसी ने रात में भूत-प्रेत की बातें सुना दीं। फिर उनके लिए रात को नींद लेना कठिन हो गया। व्यक्ति की कमजोरी होती है कि वह भययुक्त हो जाता है। अध्यात्म के साहित्य में तो यहां तक कहा गया है कि साधु श्मशान में प्रतिमा की साधना करे और वहां भयंकर दृश्यों को देखकर भी डरे नहीं। अभय की साधना के लिए मनोबल की अपेक्षा होती है। मनोबल है तो अभय का विकास संभव है। दृढ़ निश्चय है तो भी अभय पुष्ट हो सकता है। एक बुजुर्ग आदमी के सामने एक प्रस्ताव आया कि आपके मकान के सामने दो पहाड़ हैं। अगर इन पहाड़ों को हटा दिया जाए तो रास्ता बाजार से सीधा हो जाएगा। फिर आने-जाने में चक्कर नहीं पड़ेगा। बुजुर्ग व्यक्ति को यह प्रस्ताव ठीक लगा। उसके दो लड़के थे। बुजुर्ग व्यक्ति ने अपने लड़कों से कहा—मैं तो बूढ़ा हो गया हूं। तुम दोनों इन पहाड़ों को तोड़ते जाओ, एक दिन आएगा जब ये पहाड़ समाप्त हो जाएंगे। कुछ लोगों ने उस बुजुर्ग से कहा—बाबा! इन दोनों की जिन्दगी बीत जाएगी तो भी पहाड़ पूरे नहीं टूटेंगे। बुजुर्ग व्यक्ति बोला—यदि मेरे बेटे पहाड़ नहीं तोड़ सकेंगे तो उनके बेटे पहाड़ तोड़ेंगे, फिर उनके बेटे, पोते, पड़पोते, लड़पोते सब पहाड़ तोड़ेंगे तो एक दिन अवश्य दोनों पहाड़ समाप्त हो जाएंगे। वृद्ध आदमी में मनोबल, पुरुषार्थ और प्लानिंग थी। लोगों ने सोचा कि एक बुजुर्ग आदमी में इतना मनोबल है तो हमें भी इसका सहयोग करना चाहिए। गांव के पचासों युवक जुड़ गए और देखते-देखते कुछ ही समय में दोनों पहाड़ चूर-चूर हो गए। वहां सीधा रास्ता बन गया। मनोबल एक ऐसी शक्ति है जिससे कठिन काम भी आसान हो सकता है। साधना के क्षेत्र में मनोबल के साथ बुद्धिमत्ता, चिन्तन और ज्ञान भी अपेक्षित है। केवल मनोबल है, पर कौनसा काम कैसे करना यह सूझबूझ नहीं है तो केवल मनोबल भी कार्य को सिद्धि तक नहीं पहुंचा सकता।

एक छोटा बच्चा था। एक युवक ने सोचा कि बच्चा पैसों के बारे में कुछ समझता है या नहीं, इसका परीक्षण करना चाहिए। बच्चे के सामने दो सिक्के रखे गए। एक दस पैसे का सिक्का और दूसरा एक रुपये का सिक्का। बच्चे से कहा गया कि इनमें से कोई एक उठा लो। बच्चा अति समझदार था। उसने

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only https://books.jvbharati.org

दोनों सिक्कों में से एक रुपये का सिक्का न उठाकर दस पैसे का सिक्का उठा लिया। युवक ने सोचा कि यह जानता नहीं है किसका मूल्य ज्यादा है। दूसरे युवक ने भी बच्चे के सामने एक दस पैसे का सिक्का और दूसरा एक रुपये का सिक्का रखा और पूछा—बोलो, कौनसा लोगे? फिर बच्चे ने वह दस पैसा वाला सिक्का उठा लिया। घर में एक खेल-सा हो गया। अनेक व्यक्तियों ने बच्चे के सामने दोनों सिक्के रखे, पर बच्चे का वही क्रम चलता रहा। जब उसकी मां ने उससे पूछा—क्या तुम जानते नहीं कि दस पैसे का क्या मूल्य है और एक रुपये का क्या मूल्य है? बच्चे ने तुरंत उत्तर देते हुए कहा—मां! मैं अच्छी तरह जानता हूं कि किस सिक्के का कितना मूल्य है। मां ने पूछा—फिर तुम एक रुपया क्यों नहीं उठाते, बार-बार दस पैसा ही क्यों उठाते हो? बच्चे ने बुद्धिमत्तापूर्ण जवाब देते हुए कहा—मां! अगर मैं पहली बार में ही एक रुपया उठा लेता तो यह खेल नहीं बनता, फिर तो मात्र एक रुपया मेरा होता और शेष बात समाप्त हो जाती, पर मैंने हर बार दस पैसे उठाए तो मेरे पास कितने रुपये हो गए। एक छोटे बालक में भी कितनी बुद्धिमत्ता थी। यह तो बाहर के संदर्भ में बुद्धिमत्ता हो गई। अभय की साधना में भी व्यक्ति बुद्धिमत्ता का प्रयोग करे कि मैं रात्रि में अकेला छत पर जाऊं और देखूं मेरी अभय की साधना कैसी है? इस प्रकार विभिन्न प्रयोग अभय को बढ़ाने के लिए किए जा सकते हैं और साधना करने से अभय का विकास हो सकता है।

अभय के विकास में राग एक बाधक तत्त्व है। यह साधना में भी बाधक है और व्यवहार को भी मलिन बनाता है। एक आदमी कंजूसवृत्ति वाला था। उसने किसी सेठ से कुछ रुपये उधार लिए। जो उधार लेता है उसका फर्ज है कि वह वापस मौका आने पर चुका दे। प्राकृत साहित्य में कहा गया है कि ऋण, व्रण, अग्नि और कषाय को कभी छोटा समझकर उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। थोड़ा कर्जा भी बढ़ते-बढ़ते बहुत ज्यादा हो सकता है। इसलिए आदमी को कर्जे से मुक्त हो जाना चाहिए। उस व्यक्ति ने सेठ से कर्जा तो ले लिया, किन्तु चुकाने की नियत नहीं थी। जब सेठ वसूली करने के लिए जाता तो वह व्यक्ति कहता कि कल आना, कल चुका दूंगा। यों करते-करते कितने कल बीत गए, पर कर्जा नहीं चुकाया। एक दिन जब सेठ वसूली के लिए आया तो वह बाहर गया हुआ था। उसका बेटा वहां था। उसने कहा—अभी हम लोग बुआई करेंगे, उसके वृक्ष तैयार होंगे, फिर लकड़ी काटेंगे, तत्पश्चात् फर्नीचर बनाएंगे, फिर उनको बेचेंगे। उससे जब पैसा मिलेगा, तब हम कर्जा चुका देंगे। सेठ वापिस चला गया। जब लड़के का पिता घर आया तो लड़के ने सारी बात बता दी। पिता ने कहा—बेटा! तुमने यह क्यों कहा? इसका मतलब तो यह हुआ कि हमें कुछ वर्षों बाद तो कर्जा चुकाना ही पड़ेगा। इससे तो मेरा जवाब ठीक था। मेरा कल कभी नहीं आता। कल करते-करते उसका सारा जीवन पूरा हो जाता। हमें कुछ चुकाना ही नहीं पड़ता। यह कितनी आसक्ति या नियत की खराबी है। हालांकि राग को छोड़ना कोई आसान काम नहीं है, परन्तु अभ्यास और साधना के द्वारा उसको छोड़ा जा सकता है। जैसे कर्मों को काटने के लिए तपस्या की तलवार आवश्यक है, वैसे ही भय को छोड़ने के लिए अभय की तलवार आवश्यक होती है। अभय की ऐसी मजबूत तलवार हाथ में हो कि वह भय को छिन्न-भिन्न कर दे। एक व्यक्ति अपने बॉडीगार्ड के साथ जा रहा था। बॉडीगार्ड के पास तलवार थी। रास्ते में एक डाकू मिल गया। बॉडीगार्ड ने तलवार का प्रयोग किया और डाकू वहां से नौ-दो-ग्यारह हो गया। सेठ ने बॉडीगार्ड से कहा—आज तो तुमने मुझे और पैसे, दोनों को बचा लिया। बॉडीगार्ड बोला—सेठ साहब! मैंने क्या किया, यह तो सारी तलवार की करामात थी। आपने जो तलवार मुझे दी थी सारा उसका ही प्रभाव था। सेठ ने सोचा कि करामात तो तलवार की है तब मैं इसको वेतन क्यों चुकाऊं। बॉडीगार्ड को कुछ वेतन देकर नौकरी से बर्खास्त कर दिया। अब सेठ रात को सोता तो तलवार अपने पास रखता। योग की बात, एक रात फिर डाकू आ गए। सेठ ने सोचा कि तलवार मेरे पास है फिर भय किस बात का, किन्तु देखते-देखते डाकू सारा धनमाल लेकर चले गए। सेठ तलवार का प्रयोग करना नहीं जानता था। इसलिए वह धन की सुरक्षा नहीं कर सका। इसी प्रकार आदमी अभय की तलवार अपने पास रखे और समय-समय पर उसका प्रयोग करता रहे तो वह भयमुक्त हो सकता है।

मेरे बचपन का एक छोटा-सा संस्मरण मुझे याद आ रहा है। सरदारशहर में मेरे संसारपक्षीय दो घर हैं। दोनों घर के बीच में एक लूणिया वाली गली

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

आती है। मैं उससे आया-जाया करता था। उस गली में दो कुत्ते रहते थे। जब मैं आता-जाता तो वे कुत्ते भौंकने लग जाते। मैंने सोचा कि मेरा बार-बार इस घर से उस घर में आने-जाने का काम पड़ता है। ये कुत्ते भौंकते हैं। कई बार पीछे आ जाते हैं। इनसे मुझे अपनी रक्षा करनी चाहिए। मेरे दिमाग में एक आइडिया आ गई। मैंने सोचा, अब से मैं एक डण्डा अपने हाथ में रखूंगा, उससे मेरी रक्षा हो जाएगी। मैंने हाथ में डण्डा रखना शुरू कर दिया। वे कुत्ते जैसे ही भौंकते और मेरे पास आते, मैं डण्डा घुमाना शुरू कर देता। इससे मेरा भय भी कम हो गया और कुत्ते मुझे काट भी नहीं सके। बाद में मैंने सोचा कि वह तो मैंने बचपन में प्रयोग किया था कुत्तों से रक्षा के लिए। अब मुझे साधना के क्षेत्र में भी कुछ प्रयोग करना चाहिए। साधना में राग-द्वेष के कुत्ते हमें काटने के लिए, तकलीफ देने के लिए बीच में आते रहते हैं। इन कुत्तों से बचने के लिए हमारे पास अनासक्ति का डण्डा होना चाहिए, वीतरागता की साधना होनी चाहिए। इसका अभ्यास होगा तो हम राग-द्वेष के कुत्तों से अपनी रक्षा कर सकेंगे।

धम्मपदकार ने एक महत्त्वपूर्ण तथ्य बताया है कि भय वहां होता है जहां लोभ है, द्वेष का भाव है। जहां राग नहीं, द्वेष नहीं, मोह नहीं, वहां जागृति आ जाती है। जो जागृत होता है उसको भय नहीं सताता। संस्कृत साहित्य में कहा गया—'जागरिते भयं नास्ति।' जहां जागरूकता होती है वहां भय नहीं होता। भय अनेक विषयों से संबद्ध होता है। प्राचीन साहित्य में सात प्रकार के भय बताए गए हैं—

१. इहलोक भय—सजातीय भय—जैसे मनुष्य को मनुष्य से होने वाला भय।

२. परलोक भय—विजातीय भय—जैसे तिर्यंच, देव आदि से होने वाला भय।

३. आदान भय—धन आदि के अपहरण से होने वाला भय।

४. अकस्मात् भय—बाह्य निमित्तों के बिना अपने ही विकल्पों से होने वाला भय।

५. वेदना भय—पीड़ा आदि से उत्पन्न भय।

६. मरण भय—मृत्यु का भय।

७. अश्लोक भय—अकीर्ति का भय।

हम अभी वीतराग नहीं बने हैं। इसलिए कभी भय, कभी राग और कभी द्वेष भी आ जाता है। परन्तु हमारा लक्ष्य वीतरागता का बना रहे। हमारी साधना वीतरागता की होती रहे। लक्ष्य है और गति है तो धीरे-धीरे आगे बढ़ सकेंगे। वीतरागता की साधना करने से आदमी राग-द्वेष से मुक्त हो सकेगा, भय से मुक्त हो सकेगा, जिससे अभय की चेतना का विकास हो सकेगा।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

आचार्य महाश्रमण : एक परिचय

आचार्य महाश्रमण उन महान संत-विचारकों में से एक हैं जिन्होंने आत्मा के दर्शन को न केवल व्याख्यायित किया है, अपितु उसे जीया भी है। वे जन्मजात प्रतिभा के धनी, सूक्ष्मद्रष्टा, प्रौढ़ चिंतक एवं कठोर पुरुषार्थी हैं। उनकी प्रज्ञा निर्मल एवं प्रशासनिक सूझबूझ बेजोड़ है। एक विशुद्ध पवित्र आत्मा जिनके कार्यों में करुणा, परोपकारिता एवं मानवता के दर्शन होते हैं तथा जिनकी विनम्रता, सरलता, साधना एवं ज्ञान की प्रौढ़ता भारतीय ऋषि परम्परा की संवाहक दृष्टिगोचर होती है।

१३ मई, १९६२ को राजस्थान के एक कस्बे सरदारशहर में जन्मे एवं ५ मई, १९७४ को दीक्षित हुए आचार्य महाश्रमण अणुव्रत आंदोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी एवं आचार्यश्री महाप्रज्ञ की परम्परा में तेरापंथ धर्मसंघ के ११वें आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

अध्यात्म, दर्शन, संस्कृति और मानवीय चरित्र के उत्थान के लिए समर्पित आचार्य महाश्रमण आर्षवाणी के साथ अध्यात्म एवं नैतिकता, अनुकंपा और परोपकार, शांति और सौहार्द जैसे मानवीय मूल्यों एवं विषयों के प्रखर वक्ता हैं।

वे एक साहित्यकार, परिव्राजक, समाज सुधारक एवं अहिंसा के व्याख्याकार हैं। आचार्य महाप्रज्ञ के साथ अहिंसा यात्रा के अनन्तर आपने लाखों ग्रामवासियों एवं श्रद्धालुओं को नैतिक मूल्यों के विकास, साम्प्रदायिक सौहार्द, मानवीय एकता एवं अहिंसक चेतना के जागरण के लिए अभिप्रेरित किया।

'चरैवेति-चरैवेति' इस सूक्त को धारणकर वे लाखों-लाखों लोगों को नैतिक जीवन जीने एवं अहिंसात्मक जीवनशैली की प्रेरणा देने के लिए पदयात्राएं कर रहे हैं।

अत्यन्त विनयशील आचार्य महाश्रमण अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान एवं अहिंसा प्रशिक्षण जैसे मानवोपयोगी आयामों के लिए कार्य कर तनाव, अशांति तथा हिंसा से आक्रांत विश्व को शांति एवं संयमपूर्ण जीवन का संदेश दे रहे हैं।

शांत एवं मृदु व्यवहार से संवृत्त, आकांक्षा–स्पृहा से विरक्त एवं जनकल्याण के लिए समर्पित युवा मनीषी आचार्य महाश्रमण भारतीय संत परम्परा के गौरव पुरुष हैं।

आचार्यश्री महाश्रमण की प्रमुख कृतियां

आओ हम जीना सीखें

जीता हर कोई है, किन्तु कलापूर्ण जीना कोई-कोई जानता है। प्रस्तुत पुस्तक में आचार्यश्री महाश्रमण ने कलात्मक जीवन के सूत्रों को प्रकाशित करते हुए जीवन की प्रत्येक क्रिया का व्यवस्थित प्रशिक्षण दिया है। वस्तुतः यह कृति 'कैसे जीएं' इस प्रश्न का सटीक समाधान है।

क्या कहता है जैन वाङ्मय

इस पुस्तक में जैन शास्त्रों में उपलब्ध सफलता के सूत्रों में से चुनिंदा मोतियों को पिरोया गया है। प्रस्तुत कृति आचार्यश्री महाश्रमण के हृदयस्पर्शी प्रवचनों का महत्त्वपूर्ण संग्रह है।

दुःख मुक्ति का मार्ग

आचार्यश्री महाश्रमण ने इस पुस्तक में साधना के रहस्यों को प्रस्तुत किया है। सुख, शांति और आनंद की प्राप्ति में यह कृति मार्गदर्शक की भूमिका अदा करती है।

संवाद भगवान से

प्रतिष्ठित जैनागम उत्तराध्ययन के २९वें अध्ययन पर आधारित इस पुस्तक में भगवान महावीर और उनके प्रमुख शिष्य गौतम के रोचक संवाद के माध्यम से मन में संशय पैदा करने वाले प्रश्नों को विस्तृत रूप में समाहित किया गया है। यह कृति दो भागों में उपलब्ध है।

महात्मा महाप्रज्ञ

युगप्रधान आचार्यश्री महाप्रज्ञ तेरापंथ के आचार्य, अनुशास्ता, साहित्यकार और प्रवचनकार थे। इन सबसे पहले वे एक सन्त थे, महात्मा थे, उनकी आत्मा में महानता थी। उनके उत्तराधिकारी आचार्यश्री महाश्रमण ने उन्हें नजदीकी से देखा और जाना। प्रस्तुत पुस्तक में श्री महाप्रज्ञ के नौ दशकों के इतिहास और रहस्यों को उजागर किया गया है।

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org

रोज की एक सलाह

लघु आकार में प्रस्तुत यह पुस्तक 'गागर में सागर' उक्ति को चरितार्थ करती है। आचार्य महाश्रमण द्वारा सूक्तियों में दी गई 'रोज की एक सलाह' हर व्यक्ति के लिए प्रतिदिन की पर्याप्त खुराक है। सदा साथ रखी जा सकने वाली यह कृति न केवल सफलता की प्राप्ति में सहायक है, अपितु व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान में भी इसकी उपयोगिता असंदिग्ध है।

१. सुखी बनो २. सम्पन्न बनो ३. विजयी बनो

आचार्य महाश्रमण ने प्रस्तुत तीनों पुस्तकों में श्रीमद्भगवद्गीता और उत्तराध्ययन की तुलनात्मक विवेचना करते हुए साधक का सुन्दर पथदर्शन किया है। तीन भागों में उपलब्ध यह ग्रन्थमाला जहां दो महनीय ग्रन्थों को युगीन रूप में प्रस्तुति देती है, वहीं अध्यात्मरसिकों के लिए पोषक का कार्य भी करती है।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं

आचार्यश्री महाश्रमण की प्रस्तुत पुस्तक में जैन तत्त्वज्ञान, साधना के प्रयोगों, महापुरुषों और उनके अवदानों आदि विविध विषयों से संबद्ध उपयोगी और प्रेरणास्पद सामग्री संजोई गई है।

शिलान्यास धर्म का

धर्म का आदि बिन्दु है - सम्यक्त्व। आचार्य महाश्रमण की प्रस्तुत कृति सम्यक्त्व, उसके लक्षण, दूषण, भूषण तथा देव, गुरु, धर्म आदि विषयों पर आधारित प्रवचनों और प्रश्नोत्तरों का संग्रह है। जैन अनुयायियों की आस्था के दृढ़ीकरण में यह कृति सहायक की भूमिका अदा करती है।

● प्राप्ति स्थान ●

जैन विश्व भारती

पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६, जिला : नागौर (राज.)

फोन नं. : (०१५८१) २२६०८०/२२४६७१

ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© Jain Vishva Bharati For Private & Personal Use Only nly https://books.jvbharati.org